योगवाणी

वर्ष ५१, जनवरी २०२६

विषयानुक्रम

योगवाणी

वर्ष ५१, जनवरी, २०२६
आर.एन.आई. २९०७५/७६

"मानव जीवन में योग की साधना की परम उपयोगिता सहज सिद्ध है। योग ही एक ऐसा निरपेक्ष साधन मार्ग है जिसके आश्रय में सर्व सामान्य को जीवन की व्यवहारिकता और सच्चिदानन्द स्वरूप का ज्ञान सुलभ होता है"

राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

वार्षिक सदस्यता	:	125/-
द्विवार्षिक सदस्यता	:	250/-
पंचवार्षिक सदस्यता	:	600/-
आजीवन सदस्यता	:	1200/-
एक प्रति का मूल्य	:	15/-

मुद्रक:
मोती पेपर कनवर्टर्स
डी-4/1, सेक्टर 13
गीडा, गोरखपुर
दूरभाष : ०५५१-२५८००९३

पृष्ठ

जीवनामृत

श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ०२
योगामृत ०३
गोरखवाणी ०४
राशियों का मासफल ०५

नाथपन्थ एवं दर्शन

नाथ संस्कृति में देह-साधना ०७
-महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं नाथपन्थ ११
-डॉ. कुशलदेव मिश्र एवं डॉ हर्षवर्धन सिंह

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित आत्म तत्व
-डॉ. अभिषेक पाण्डेय १७

धर्म, संस्कृति एवं अध्यात्म

संस्कृत और भारतीय संस्कृति : आधार, प्रभाव और वैश्विक महत्व
-डॉ. चन्द्रकान्त दत्त शुक्ल २३

काशी में निवास करने के नियम
- राजेश्वराचार्य २६

जातिव्यवस्था ईश्वर प्रदत्त अथवा मनुष्य निर्मित: एक विश्लेषण
- डॉ. अभिषेक उपाध्याय २८

चतुर्थ आवरण

स्वास्थ्य रक्षा में अमरूद का उपयोग

॥ ॐ नमो भगवते गोरक्षनाथाय ॥

योगवाणी

(धर्म-संस्कृति, अध्यात्म एवं योग प्रधान पत्रिका)

संस्थापक-सम्पादक

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त अवेद्यनाथ

प्रबन्ध-सम्पादक

डॉ. प्रदीप कुमार राव

सम्पादक

डॉ. प्रांगेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

श्री गोरखनाथ मंदिर

गोरखनाथ-२७३०१५

web: www.gorakhnathmandir.in

E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com

दूरभाष : (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४

॥ श्रीशिवगोरक्षस्तुतिः ॥

नित्याय, नाथाय निरञ्जनाय,
निवातनिष्कम्प-शिखोपमाय ।
ज्योतिः स्वरूपाय नमोनिभाय,
गोरक्षनाथाय नमः शिवाय ॥1॥

मत्स्येन्द्र-शिष्याय महेश्वराय,
योग-प्रचाराय वपुर्धराय ।
अयोनिजायामरविग्रहाय,
गोरक्षनाथाय नमः शिवाय ॥2॥

शुद्धाय बुद्धाय विमुक्तकाय,
शान्ताय दान्ताय निरामयाय ।
सिद्धेश्वरायारिवल संश्रयाय
गोरक्षनाथाय नमः शिवाय ॥3॥

कर्पूरगौराय जटाधराय,
कर्णान्त-विश्रान्त-विलोचनाय ।
त्रिशूलिने भूति-विभूषिताय
गोरक्षनाथाय नमः शिवाय ॥4॥

अनाथ-नाथाय जगद्धिताय,
कृपा-कटाक्षोद्धृत-कण्टकाय ।
आपामरं योग-सुधा-प्रदाय,
गोरक्षनाथाय नमः शिवाय ॥5॥

इति कुँवरनरेन्द्रप्रतापसिंह कृतं शिवगोरक्षपञ्चकं समाप्तम्

■

योगामृत

गोरक्ष उवाच :

गुरुजी! कैसे आवे कैसे जाई? कैसे जीव रहे समाई?
कैसे तन मन स्थिर रहे? सतगुरू होय सो बुझाय कहे।। ७३ ।।

भावार्थ–प्राणात्मा शरीर में कैसे आता है, कैसे जाता है? शरीर निधन पर जीव कहां समा जाता है ? मन तथा सूक्ष्म शरीर सामग्री कहाँ स्थिर रहती है ?

मत्स्येन्द्र उवाच :

अवधू! सहजे आवे सहजे जाई, सहजे जीव रहे समाई।
सहजे तन मन स्थिर रहे ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ।। ७४ ।।

भावार्थ–हे शिष्य ! अणु–परमाणु शून्य ही आती जाती है और तत्व अंश सामग्री सूक्ष्माणु शून्य में ही समाती है। साधन काल कर्मयोग से तन मन स्थिर आयु प्राणान्त भौतिक प्राकृतिक मर्यादा की स्वाभाविक स्थिति में रहती है।

गोरक्ष उवाच :

गुरुजी! कहाँ बसे शक्ति? कहाँ बसे शिव ? कहाँ बसे जीव।
कहाँ होई इनका परचा लहे? सतगुरू होय सो बुझाय कहे।। ७५।।

भावार्थ– हे भगवन् ! प्राकृतिक भूगोल खगोल में तथा शरीर में प्रकृति–शक्ति, जीवात्मा–शंकर का कहां निवास है ? प्राण और जीव कहां रहते हैं ? इन सबका संयोग कहां पर कैसे होता है? यह समझा कर कहिये।

मत्स्येन्द्र उवाच :

अवधू! अरध बसे शक्ति उरध बसे शिव,
भीतर बसे पवन अंतरिक्ष बसे जीव।
निरन्तर होइ इनका परचा लहे,
ऐसा विचार मत्स्येन्द्र कहे ।। ७६ ।।

भावार्थ–पृथ्वी–नाभि तल पर प्रकृति–शक्ति बसती है ? ऊपर गगन–अम्बर में कल्याण तत्त्व का वास है ? ब्रह्माण्ड–पिंड क्रिया चालक प्राण भीतर रहता है और जो शून्य मण्डल में रहे वही जीव है। प्रलय–काल अथवा साधना–काल में इनका संयोग होता है।

■

गोरखवाणी

यहु मन सकती यहु मन सीव। यहु मन पांच तत्त का जीव।
यहु मन ले जै उनमन रहै। तौ तीनि लोक की बातां कहै ॥ ५० (क) ॥

योग-साधना में सिद्धि मन को संपूर्ण वश में करने का चरम फल है। मन योग-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। यही मन परमशक्ति, जागृत कुंडलिनी महामाया है, तो यही मन परमशिव का रूप ग्रहण कर लेता है। यही मन पांचभौतिक शरीर में निवास करनेवाला जीवात्मा है। इस मन को योगी उन्मन रखता है अर्थात् परमात्म चिंतन के अभिमुख रखता है। वह तीनों लोक आकाश, पाताल और मृत्यु लोक का रहस्य समझ लेता है।

अवधू नव घाटी रोकि लै बाट। बाई बणिजै चौसठि हाट।
काया पलटे अबिचल बिध। छाया बिबरजित निपजे सिध ॥ ५० (ख) ॥

हे अवधूत ! प्राणायाम की सिद्धि के लिए अत्यंत आवश्यक है कि शरीर के नवों द्वार एक मुख, दो नेत्र, दो कान, दो नासिका रंध्र, उपस्थ और गुदा पर संयम रखे। इसका सुपरिणाम यह होगा कि शरीर वायु को भीतर पचा लेने में समर्थ होगा और शरीर की चौसठ संधियों में वायु का व्यापार सुव्यवस्थित ढंग से होने लगेगा। वायु में विकार नहीं आएगा और प्राणायाम में सिद्धि मिलेगी। शरीर में पूर्ण आरोग्य का लाभ होगा। यह एक प्रकार का कायाकल्प है, इससे योग-साधक सिद्धावस्था में पहुँच जाएगा, उसके शरीर की छाया नहीं पड़ेगी, वह सर्वत्र गमन करने में सक्षम होगा।

अवधू दंम कौं गहिबा उनमनि रहिबा, ज्यूं बाजबा अनहद तूरं।
गगन मंडल मैं तेज चमकै, चंद नहीं तहां सूरं ॥ ५१॥

हे अवधूत ! प्राण का संयम करना चाहिए। दम अथवा प्राण का संयम प्राणायाम के अभ्यास से ही सिद्ध होता है। प्राण को नियंत्रित करने पर मन पूर्णतया वश में हो जाता है, उन्मनावस्था सिद्ध होती है। नव द्वार (मुख, नेत्र, नासारंध्र, कान, उपस्थ, गुदा) तो प्रत्यक्ष है पर ब्रह्मरंध्र दसवाँ द्वार अप्रत्यक्ष है। दशम द्वार में ही योगी उन्मन होता है। नाद बिंदु के मेल से उत्पन्न अनाहत नाद का श्रवण कर वह निराकार परब्रह्म शिव के प्रकाश का ब्रह्मरंध्र में दर्शन करता है। ब्रह्मरंध्र में सूर्य और चंद्रमा की ज्योति के बिना हो अलख-निरंजन, चिन्मय तत्त्व भासित होता है।

■

राशियों का मासफल

गुरुवार 01-01-2026 से 31-01-2026 शनिवार तक

***डॉ० दिग्विजय शुक्ल**

मेषः अपने मन में आत्म विश्वास पैदा करें। शिक्षा में सजग रहने की आवश्यकता है। व्यावसायिक कार्यों में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। प्रतियोगी परीक्षाओं में परिश्रम के साथ सफलता मिलेगी। आर्थिक विपन्नता दूर होगी। परिवार के प्रति लगाव उत्पन्न होगा।

वृषः पारिवारिक जीवन में खुशहाली का वातावरण रहेगा। स्वजनों का प्रेम एवं सहयोग मिलेगा। कार्मिक क्षेत्र में सुधार की स्थिति बनेगी। सन्तान की उन्नति का योग बनेगा। आर्थिक बाधा दूर होगी। धर्म कार्य करने का अवसर बनेगा।

मिथुनः अपने स्वजनों से सजग सतर्क रहने की आवश्यकता है। आपकी मानसिक परेशानी दूर होगी। आर्थिक रूप से सम्पन्न होंगे। कर्म क्षेत्र में सफलता मिलेगी। प्रतिस्पर्धादि कार्यों में सफलता दिख रही है। सन्तान की उन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे।

कर्कः आप धन के मामले में मजबूत होंगे। व्यवसाय के कार्यों में सफलता मिलेगी। सन्तान की समुन्नति के मार्ग बनेंगे। रिस्की कार्यों में सफलता मिलेगी। कार्मिक क्षेत्र में आने वाली बाधा दूर होगी। शिक्षा के प्रति जागरुक रहने की जरूरत है।

सिंहः आपकी मानसिक स्थिति में बदलाव आयेगा। सन्तान की समुन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। व्यावसायिक कार्यों में सफलता मिलेगी। शिक्षा के सम्वर्धन में लगातार प्रयास जारी रखें। धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न होगी।

कन्याः आपके मन में आत्मविश्वास उत्पन्न होगा। क्रोध पर अंकुश लगाने की जरूरत है। सामाजिक कार्यों में व्यस्तता बढ़ेगी। आर्थिक रूप से आय के स्रोत बनेंगे। मित्रजनों का सहयोग मिलेगा। सन्तान पक्ष से लाभ मिलेगा। प्रतियोगी परीक्षा में सफलता मिलेगी।

तुलाः आपके अवरूद्ध कार्यों में सफलता मिलेगी। सन्तान का लाभ मिलेगा। आर्थिक रूप से सम्पन्न होंगे। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। परिवार में खुशी का वातावरण बनेगा। व्यवसाय में स्थिरता आयेगी। धार्मिक कार्य करने का अवसर बनेगा।

वृश्चिकः अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देने की जरूरत है। पारिवारिक संबंधों में मधुरता आयेगी। सन्तान की समुन्नति के मार्ग प्रशस्त होंगे। आर्थिक खर्च में अधिकता आयेगी। व्यापार में अस्थिरता की स्थिति बन सकती है। शिक्षा में सजग– सतर्क रहने की आवश्यकता है।

धनुः अपने वाणी में मधुरता लाने की जरूरत है। व्यापार में सफलता मिल सकती है। अध्ययन और अध्यापन में अभिरुचि बढ़ेगी। आर्थिक बाधा दूर होगी। अधिक परिश्रम पर थोड़ा लाभ मिलेगा। सन्तान की उन्नति का योग बनेगा। स्वजनों का सहयोग मिलने का योग बनेगा।

मकरः आपकी वाणी में कठोरता आयेगी। शैक्षणिक कार्यों में विशेष ध्यान देना होगा। मानसिक परेशानी उत्पन्न हो सकती है। प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता मिलेगी। धन लाभ का योग बनेगा। पारिवारिक पक्ष से मजबूत होंगे। सामाजिक पद प्रतिष्ठा बढ़ने का योग बनेगा।

कुम्भः परिवार के साथ धार्मिक यात्रा करने का सुयोग बनेगा। स्वास्थ्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है। मानसिक परेशानी बढ़ सकती है। व्यापार में मन लगाना अति आवश्यक होगा। आर्थिक रूप से मजबूत होंगे। प्रतिस्पर्धा में संघर्ष के साथ लाभ मिलेगा।

मीनः परिवार में मधुरता का योग बनेगा। व्यवसाय में आकस्मिक लाभ मिलेगा। दौड़ भाग के जीवन से मुक्ति पा सकते है। आर्थिक विपन्नता दूर होगी। स्वास्थ्य पर ध्यान देना अति आवश्यक होगा। सन्तान सुख का लाभ होगा। शिक्षा में संघर्ष के साथ सफलता मिलेगी।

■

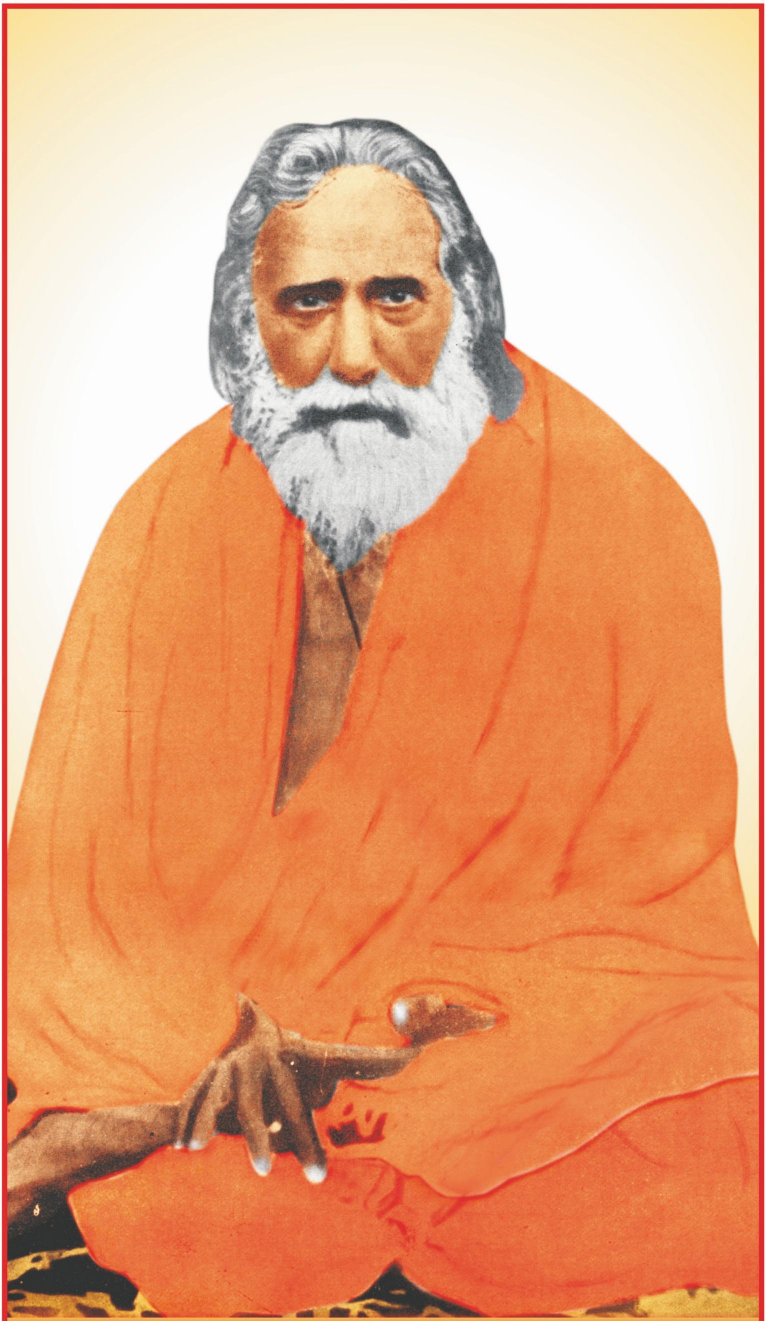

योगिराज बाबा गम्भीरनाथ

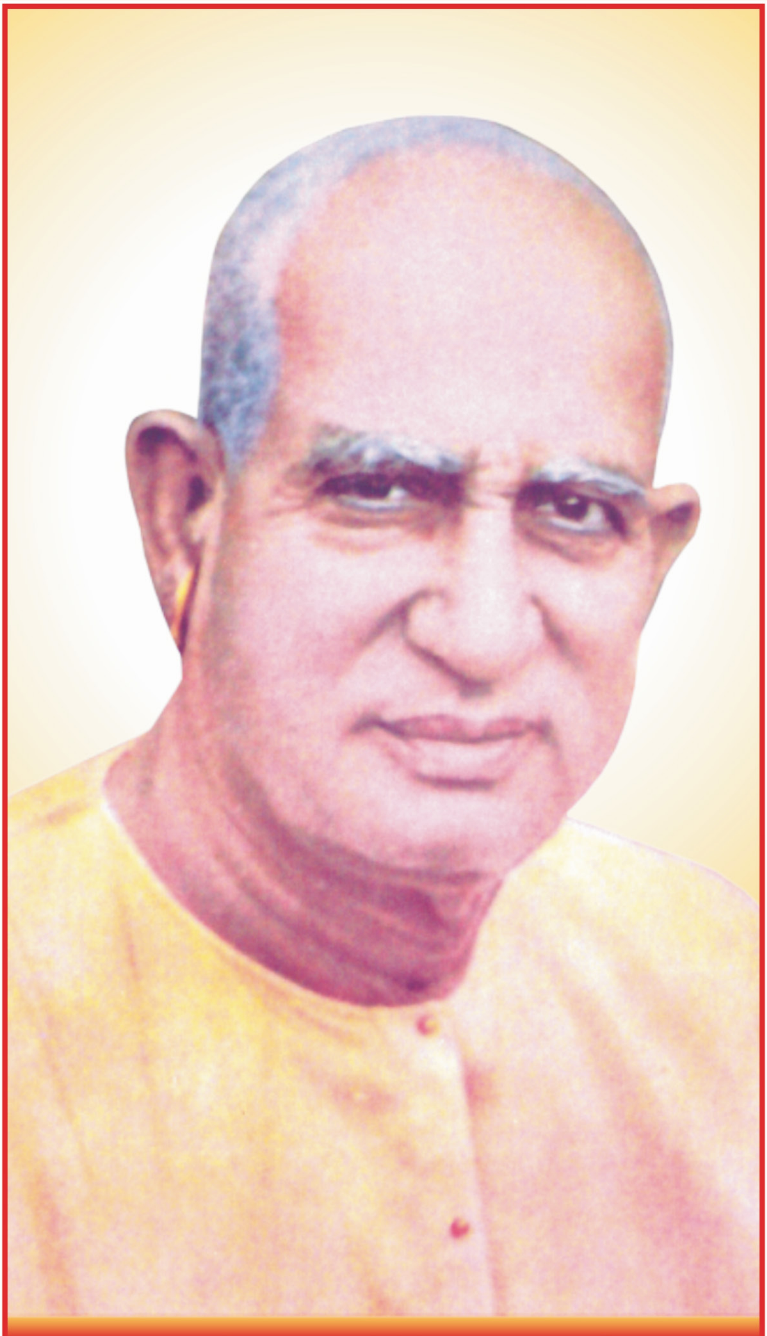

युगपुरुष ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ जी महाराज

नाथ-संस्कृति में देह-साधना

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

नाथ संस्कृति में देह-साधना का स्थान अत्यन्त उच्च है। प्राचीन काल में सिद्ध या निर्मल देह-प्राप्ति के लिये सविशेष गुप्त उपदेश बहुसम्प्रदायों में मिलता है। जिस देह में जरा, मृत्यु, क्षुधा, तृष्णा, कामादि वृत्ति और रोग-शोक आदि भाव-विकार उत्पन्न नहीं होते और जो अत्यन्त निर्मल है, उसी को सिद्ध या शुद्ध देह माना जाता था। विभिन्न मार्ग के विभिन्न योगी लोग विभिन्न उपायों से अपनी देह को सिद्ध करने का प्रयत्न करते थे । सिद्ध होने पर यह देह अमरदेह नाम से प्रसिद्ध होती थी। नाथपंथीगण हठयोग के अन्तर्गत वायुप्रभृति की क्रियाविशेष से और कोई कोई रसायन की प्रक्रिया से सिद्धदेह लाभ करने की चेष्टा करते थे। वायु तथा पारद के संस्कार तथा नियंत्रण से देह-सिद्धि होती है। पक्षान्तर में विन्दु-साधना द्वारा ब्रह्मचर्य में प्रतिष्ठित होकर शोधित विन्दु के उर्ध्वमुख प्रभाव से भी देह-सिद्धि होती है।

इन दोनों के अतिरिक्त भाव-साधना के प्रभाव से भी स्थिर तथा निर्मल देह-लाभ हो सकता है। बौद्ध सङ्ख्यान के साधक, वैष्णव सहजिया और बाउल साधक भाव-साधना के अनुरागी थे, परन्तु इस साधना के साथ विन्दु-साधना का अकाट्य सम्बन्ध है। वस्तुतः प्राचीन समय से ही तांत्रिक तथा कौलगण के भीतर प्रचलित वीरसाधना तथा कुलप्रक्रिया भी कार्यसाधन का ही प्रकार-भेद मालूम पड़ता है; उस समय में योगी, ज्ञानी, रसिक प्रभृति, सभी लोग विशिष्ट अधिकार-क्षेत्र में अत्यन्त संगोपन में देह-साधना की प्रक्रिया करने के लिये चेष्टा करते थे। महायान बौद्ध धर्म में वज्रयोग भी यथाविधि अनुष्ठित होने पर सिद्धि-देह की प्राप्ति में सहायक होता है। गोविन्द भगवत्पाद ने, 'रसहृदय ग्रंथ' में इस विषय में जो कुछ लिखा है, वह सबके लिये अनुधावन के योग्य है। वस्तुतः देह का तथा मन का साधन सम्यक् रूप से अनुष्ठित होने पर ही पूर्णत्व-लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। देह-साधना के प्रभाव से देह विकार-हीन तथा चिन्मय होती है। इस देह को काल स्पर्श नहीं कर सकता है। यह देह होने पर भी मृत्युहीन देह है केवल मृत्युहीन ही नहीं, जरा, रोग प्रभृति यावतीय विकारहीन भी हैं।

देह-सिद्धि भी दो प्रकार की है। एक प्रकार की सिद्धि का फल है अमरत्व-प्राप्ति। द्वितीय प्रकार की सिद्धि का फल है मृत्युञ्जयत्व-लाभ। समुद्रमंथन काल में अमृत तथा विष दोनों ही उत्थित हुए थे। अमृतपान करके देवत्व-लाभ हुआ। परन्तु कालकूट विषपान करके महादेवत्व लाभ हुआ। देह-सिद्धि के प्रसङ्ग में सिद्धि के ये दोनों अंग स्मरण रखने चाहिए। प्रारम्भिक सिद्धि में देह जरा-मृत्युवर्जित हो जाती है परन्तु पूर्णत्व-लाभ नहीं होता क्योंकि उस समय देह निर्विकार होने पर भी मन

पूर्णतया निर्विकार तथा वासनाशून्य नहीं होता । अन्त में मन को भी ब्रह्मरूप में परिणति-लाभ करना पड़ता है, तभी सिद्धि की पूर्ण अवस्था का उदय हुआ कहा जा सकता है। सिद्ध देह-लाभ करने पर योगी को सिद्ध कहा जाता है। सिद्धगण समग्र विश्व में अपने सुपक्व योगदेह द्वारा अपनी इच्छानुसार परिभ्रमण करते हैं और नाना प्रकार से जीव का कल्याण-विधान करते हैं। सिद्ध लोग सभी जीवन्मुक्त महापुरुष हैं। इसमें सन्देह नहीं । परन्तु शुद्ध वासनाओं का सद्भाव उनमें रहता है और उसको जीवन्मुक्ति का बाधक नहीं समझा जाता। परन्तु परामुक्ति-लाभ करने के लिये सिद्धों को भी ब्रह्म-उपासना करनी पड़ती है। उस समय स्वभावसिद्ध प्रणव-साधना ही सिद्धों के लिए एकमात्र अवलम्बन का विषय होता है । यही ब्रह्मोपासना है। इसमें पूर्णत्व-लाभ करने पर सिद्ध-स्वरूप विशुद्ध चिन्मयस्वरूप में परिणत हो जाता है। परन्तु सिद्धदेह का पात नहीं होता अर्थात् कदाचित् एक बार सिद्धदेह का लाभ होने पर उसका परिहार कभी नहीं होता। आगम के अनुसार दैव देह तथा शक्तिदेह का जो भेद है उसी प्रकार अपरसिद्ध देह तथा परसिद्ध देह का भी भेद जानना चाहिए । अपर-सिद्ध देह जीवन्मुक्त का है परन्तु परसिद्ध देह परममुक्त का है। परसिद्धदेह से जगत् की तरफ दृष्टि देना तथा दुःखमय जगत् का तथा जीवों का हित करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं। जीवन्मुक्त को सिद्धदेह इसीलिये आवश्यक है कि कृपापात्र जीवों का साधनपूर्ण होने पर इन लोगों को आकर्षण करके परमभूमि में पहुँचाने के बाद जीवन्मुक्त भी परामुक्ति को ग्रहण करते हैं। जिनका अधिकार-क्षेत्र क्षुद्र है, उनके लिये मायिक जगत् से सम्बन्ध-रक्षा करना अधिक दिन आवश्यक नहीं होता । परन्तु जिनका अधिकार-क्षेत्र विशाल है, जो अधिकसंख्यक लोगों के लिये हितकामी हैं, उनके लिये सुदीर्घकाल-पर्यन्त माया से सम्बन्ध रखना पड़ता है, क्योंकि अपने आश्रित जनों की पूर्ण आत्मशुद्धि जब तक न हो, तब तक उनको छोड़कर जीवन्मुक्त परमपद में नहीं जा सकते।

सिद्धदेह में काल का प्रभाव तो पड़ता नहीं है, परन्तु इस पर योगी की इच्छाशक्ति काम करती है। सिद्धदेह का विघटन कभी नहीं हो सकता, क्योंकि ये नित्य हैं परन्तु संकोच हो सकता है। सिद्धदेह से जब कोई कार्य नहीं लेना होता है तब योगी अपनी इच्छा से उसे संकुचित करते हैं और परामुक्ति-पत्र में प्रवेश करते हैं। जहाँ माया से सम्बन्ध विल्कुल नहीं रहता। उस समय योगी का शाक्त स्वरूपभाव रहता है, जो चिदाकार है। समर्थ योगी इच्छा करने पर संकुचित जीवन्मुक्त देह को फिर भी प्रसारित करके उसके द्वारा मायिक जगत् में संचरण कर सकते हैं परन्तु यह विरल घटना है। यीशु ख्रीष्ट का 'एसेन्सन बाडी' यहाँ के वर्णित परसिद्ध देह के अनुरूप प्रतीत होता है। बुद्ध का त्रिकाय या चतुष्काय का सिद्धान्त समझने से इस विषय में पर्याप्त नवीन आलोक पड़ेगा।

यहाँ प्रसंगतः एक रहस्य की बात कही जाती है। सिद्धदेह के प्रसंग में यह जान लेना चाहिये कि प्राचीनकाल से ही सर्वदेश में दीक्षा या उसके अनुरूप प्रक्रिया के द्वारा साधक को शुद्धदेह की प्राप्ति का विवरण मिलता है। उपनयन- दीक्षा,

वैष्टिज्म, रिजनरेशनप्रभृति विभिन्न नामों से इस देह-प्राप्ति के व्यापार का वर्णन किया जाता है। गुरु या आचार्य और इष्ट देवता, इन दोनों के सहयोग से एक अभिनव शुद्ध देह उत्पन्न होती है। इस देहोत्पत्ति को लक्ष्य करके ही इस व्यापार को द्वितीय जन्म कह कर पुकारा जाता है। अज्ञानी लोग इसे रूपक समझते हैं। वस्तुतः यह रूपक नहीं, अक्षरशः सत्य है। इस देह के द्वारा ही दिव्य कर्म में अधिकार उत्पन्न होता है। इसको सेण्टपाल ने स्प्रिचुवल बाडी (Spiritual body) कहा है और हमारे शास्त्र में इसका ज्ञानदेह नाम से वर्णन किया गया है। यह भौतिक देह नहीं है और भौतिक देह का शोधित रूप भी नहीं है। यह अप्राकृत निर्मल देह है ।

हिन्दू शास्त्रों में उपासना के पूर्वांगरूप में भूतशुद्धि तथा चित्तशुद्धि का उपयोग दीख पड़ता है। इसकी प्रक्रिया वास्तविक रूप में यौगिक है, क्योंकि मंत्रों के द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी शक्ति की सहायता से अनुलोम तथा विलोम प्रक्रिया का अवलम्बन लेकर करना, सम्पादन करना पड़ता है। न्यायवैशेषिक दर्शन में जो पाकज रूप का वर्णन मिलता है, (चाहे वह पिलूपाकजन्य हो या पिठरपाकजन्य हो) योगाग्नि देह द्वारा अनुष्ठित पाक-क्रिया का फल भी प्रायः उसी प्रकार है। पहले देहारम्भक तत्वों को कार्य से कारण में क्रमशः लीन करना पड़ता है। इस प्रक्रिया में कुण्डलिनीरूप चिदग्नि का व्यापार अपेक्षित है । अन्त में अमृतकलारूप चन्द्रविन्दु क्षुब्ध होकर सुधाधारा प्रकट होती है और पूर्वोक्त कारणलीन भस्मीभूत अशुद्ध देह उसके द्वारा प्लावित होती है।

उपादानगतमल दग्ध हो जाता है और अमृत से आप्लुत होकर अमृतरूप में विलोमक्रम से अवतीर्ण होते-होते पूर्वावस्था की प्राप्ति होती है। इस प्रक्रिया से पंचभूत तथा चित्त, दोनों ही षट्चक्र के मार्ग में शुद्ध होकर प्राक्तन देह रूप में प्रकट होते हैं। यह शुद्ध देह उपासना करने में योग्य है, मंत्र-बल से यह शोधन होता है। इसलिये केवल उपासना के समय तक इसकी स्थिति होती है । अनन्तर यह तिरोहित हो जाती है, और प्राचीन देह प्रादुर्भूत होती है। यह देह की सापेक्ष्य सिद्धि है निरपेक्ष्य सिद्धि नहीं ।

वास्तव में बात यह है कि अग्नि और सोम, इन दो तत्वों को लेकर वैदिक युग से ही अभिज्ञ ऋषि लोग सृष्टि और संहार का रहस्य समझते थे । अग्नि है संहार का प्रतीक और चन्द्र है सृष्टि का प्रतीक । औषधीश चन्द्रमा से ही वृक्ष, लतादि, पशु, पक्षी-देह तथा नरदेह उत्पन्न होती है। कालाग्नि से इस चन्द्रमासी सृष्टि का संहार होता है। मरणोत्तर जिसको देह-प्राप्ति आवश्यक है, उसे इसी कारण चन्द्रमा अधीष्ठित पितृयान-मार्ग से जाना पड़ता है। किन्तु ज्ञानाग्नि से जिसका भवबीजदग्ध हो गया हो, उसकी पुनरावृत्ति नही होती है और वह देवमान-मार्ग से चलता है। परन्तु इन दोनों से अतीत भी एक अवस्था है, जागतिक सृष्टि के मूल में चन्द्रमा की पंचदश कलायें व्याप्त रहती हैं। परन्तु ये पंचदश कला अग्नि की कलाओं

की विरोधी हैं। अन्त में अग्निकला तथा चन्द्रकला में संघर्ष होता है, जिसका प्राधान्य है, उसी की जय होती है। यह मृत्यु-लोक अग्निराज्य है, क्योंकि यह कालाग्नि का क्रिया क्षेत्र है। प्रतिक्षण में परिणाम इसका स्वभाव-क्षेत्र है। इसका एक मात्र हेतु अग्नि अथवा काल की परिणामिनी शक्ति है। इसीलिए इस मर्त्यलोक में पंचदश कलात्मक चन्द्र की कलाओं से जितनी देह निर्मित हैं, सब मृत्यु के अधीन हैं, परन्तु चन्द्रमा की जो मुख्यकला है, वह है षोडशी। वही अमृतकला है। पंचदश कला को छोड़ कर अमृत-कला से अगर देह का निर्माण हो तो, उस देह पर काल का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता, वही दिव्य या सिद्ध देह है। सद्गुरु दीक्षा के समय इस देह का ही उत्पादन कर देते हैं। इसीलिए गुरु को पिता कहा जाता है। यह सोमकलामय देह-साधन की उन्नति साथ-साथ क्रमशः पुष्ट होती है। इस पुष्टि क्रिया में कालाग्नि से संघर्ष निरन्तर होता रहता है ।

कदाचित सोम का प्राधान्य होता है. कदाचित् अग्निरूपी काल का। प्राकृतिक देह में भी इस प्रकार का संघर्ष होता है परन्तु यहाँ काल का राज्य है, इसलिये अन्त में काल की ही जय होती है और अन्त में देह का पतन हो जाता है, जिसको मृत्यु कहा जाता है, परन्तु दीक्षाजन्य देह काल-राज्य की नहीं है। वहाँ जो अग्नि से संघर्ष होता है, वह स्थायी नहीं होता। वह देह षोडशी कला की है, इसलिए अन्त में सोम की ही जय होती है। तब काल का सम्बन्ध हमेशा के लिए छिन्न हो जाता है। यही मंत्रमयी तनु है। बैन्दव देह इसी का नामान्तर है। यह देह कुण्डलिनी-शक्ति से उद्भूत होती है। यह ज्योतिर्मय तथा चिरप्रकाशमान है ।

इसमें जरामृत्यु, क्षुधा, तृष्णा, काम-क्रोधादि वृत्ति कुछ नहीं। इस देह से ही ब्रह्मोपासना हो सकती है। ब्रह्म-उपासना के अनन्तर यह बैन्दवस्वरूप प्रकट चिदात्मक शाक्त स्वरूप में प्रकट होता है। योगी लोग यही कहते हैं कि जीवन्मुक्त-सिद्धावस्था में शुद्ध मन रहता है परन्तु यह मन भी सम्यक् रूपेण शुद्ध नहीं, क्योंकि मन की पूर्ण शुद्धि ही ब्रह्मत्व है, मन का निजस्वरूप ही ब्रह्म है, मन का दोष निवृत्त हो जाने पर मन ही निरंजन हो जाता है। दोषयुक्त मन जीव है, निर्दोष मन शिव है। प्रक्रिया-मार्ग में देह सिद्ध करने के लिए वायु तथा रस (वीर्य) का निरोध आवश्यक है। उसके बाद मन का निरोध हो जाने पर पूर्णयोग सिद्ध होता है, प्राण तथा अपान का साम्य-स्थापन नाभिरन्ध्र मार्ग से सुषुम्ना में प्रवेश, मूलबन्ध के द्वारा मूलाधार में समीकृत वायु का बन्धन, उसके बाद धीरे-धीरे सुषुम्ना-पथमें उसकी ऊर्ध्व-मुखी गति, इतना व्यापार आवश्यक है। इसके प्रभाव से चक्रों को भेद कर क्रमशः ब्रह्मद्वार में अर्थात् तालुमूल में या सहस्रार में उसकी गति होती है, उस समय दशम द्वार बन्द करने से अमृत-लाभ होता है। यह अमृत अधोगामी नहीं होता । इसी अमृत के द्वारा देह तथा मन का अभिषेक होने पर अमरत्व लाभ होता है।

■

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं नाथपंथ

*डॉ. कुशलनाथ मिश्र, उप-निदेशक
डॉ. हर्षवर्धन सिंह, शोध अध्येता

भारत की ज्ञान परम्परा का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। भारत को अपने ज्ञान का सात्विक अहंकार था। अध्ययन एवं आचरण हमारी पहचान थी। भारत की ज्ञान परम्परा ने सर्वाधिक आश्चर्यजनक भाषा को जन्म दिया था। सर्वाधिक स्पष्ट पौराणिकता का प्रतिपादन किया था। संसार के सर्वोत्तम दार्शनिक सिद्धान्तों को यहाँ की ज्ञान परम्परा ने खोजा था। भारत ने ही सर्वाधिक स्पष्ट धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं योग विधियों का प्रथमतया निर्माण किया था। योग भारतीय सनातन धर्म-दर्शन एवं ज्ञान परंपरा की अमूल्य निधि है, इसका मूल रूप वैदिक संहिताओं में सूचीबद्ध मिलता है। सभ्यता व संस्कृति के अभ्युदय से ही भारतीय आध्यात्मिक साधना में योग एवं उसका महत्व स्वीकार्य है। भारतीय मूल की सभी आगम-निगम, वैदिक-अवैदिक, साधना-परंपराओं में न्यूनाधिक रूप में अथवा किसी न किसी रूप में योग की स्वीकृति और देशना निरंतर मिलती है। यद्यपि एक संपूर्ण विद्या के रूप में योग साधना की दो समानांतर धाराएं पतंजलि द्वारा प्रवर्तित पतंजलि योग दर्शन एवं महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ द्वारा प्रतिस्थापित नाथ योग क्रियात्मक योग है। दोनों योग पद्धतियां एक दूसरे के पूरक हैं। योग भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। यह शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन की ऐसी पद्धति है, जिसके द्वारा मन एवं शरीर पर नियंत्रण स्थापित कर मानव अपने भविष्य को पराकाष्ठा की ऊंचाइयों पर परिलक्षित करा सकता है। योग साधना के बल पर व्यक्ति न केवल अपनी मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है बल्कि इंद्रियेतर ज्ञान की उपलब्धि तथा प्रकृति के क्रिया-कलापों पर आध्यात्मिक अंकुश भी लगा सकता है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा की आवश्यकता को पूरा विश्व महसूस कर रहा है। आवश्यकता है कि हम इस पर विस्तृत विचार मंथन करें।

प्राचीन काल से ही हमारा देश उच्च मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परंपराओं का देश रहा है। भारत की संस्कृति रही है कि भारत ने दुनिया को अलग-अलग देश के रुप में माना ही नहीं है।

**''अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ।।''**

महोपनिषद्, अध्याय मंत्र 71

महाउपनिषद् के इस सिद्धांत के आधाार पर भारत दुनिया को एक परिवार मानता हैं। यह अलग बात है की पाश्चात्य सभ्यता की आपाधापी में हम भी यह गलती से समझने लगे कि यह सभ्यता भौतिकवाद पर टिकी है, नाकि ज्ञान और अध्यात्म पर।

---

*महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ, शोधापीठ दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर, विश्वविद्यालय, गोरखपुर

इस सदी के उत्तरार्ध से पश्चिमी सभ्यता वाले देश भारतीय संस्कृति और सभ्यता को अपनाने और जानने पर जोर देने लगे हैं। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों और यहां की जीवन शैली को जानने के लिए अपने यहां कई विभाग से लेकर शोध संस्थाओं की स्थापना करने लगे हैं। भारत की परंपराओं को आज विश्व भी अपना रहा है। हमें और हमारी भावी पीढ़ियों को भी भारत के प्राचीन मूल्यों को यथोचित महत्व देना होगा। इसके लिए आंतरिक ज्ञान, गुण, शक्ति एवं आदर्शों को ठीक रूप से पहचानना एवं सही दिशा प्रदान करना होगा। प्राचीन भारत ने दर्शन, ध्वन्यात्मक भाषा विज्ञान, अनुष्ठान, व्याकरण, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, सांख्य सिद्धांत, तर्क, जीवन विज्ञान, आयुर्वेद, ज्योतिष एवं संगीत जैसे विभिन्न मानव कल्याणकारी क्षेत्रों में कीर्तिमान की स्थापना करके मानव जाति की उन्नति में अत्यधिक योगदान दिया है। प्राचीन भारतीयों द्वारा आविष्कृत विचारों और तकनीकियों का आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मूलाधार को दृढ़ करने में अद्‌भुत योगदान रहा है। जबकि इन अभिनव योगदान को वर्तमान में कुछ तो अपनाया जा रहा है, कुछ अभी भी अज्ञात हैं। उपनिषद् यद्यपि ज्ञानकाण्ड है, जिसमें आध्यात्मिक जीवन का प्रतिपादन किया गया है। तथापि साधारण मनुष्यों को कैसे कर्म करने चाहिए इसका भी उल्लेख उपनिषदों से प्राप्त होता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में नीतिबोध का रूप अधिक स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है।

प्राचीन वेदों और अन्य शास्त्रों में चिकित्सा प्रणालियों का भी उल्लेख मिलता है। चरक संहिता और सुश्रुत संहिता (1000-500 ईसा पूर्व) 700 औषधीय जड़ी बूटियों के साहित्य के मुख्य पारम्परिक संग्रह हैं। भारतीय शिक्षा के इतिहास पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है प्राचीन काल में शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति रहा है। इस उद्देश्य के अनुरुप शिक्षा का स्वरुप और विषय निर्धारित किये जाते थे। आज जरूरत है अध्यात्म को विज्ञान से, परमार्थ को व्यवहार से, परंपरा को आधुनिकता से जोड़ते हुए वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक जीवन में समरसता के लिये एकता के सूत्र के खोजने की। ऋग्वेद की ऋचाओं में कहा गया है कि ''आ नो भद्राः क्रतवो यंतु विश्वतः'' अर्थात् सात्विक विचार हर दिशा से आने दो। स्वयं को किसी चीज से वंचित न करो, अच्छी बातों को ग्रहण करो, तभी भला होगा।

हमारी संस्कृति एवं सभ्यता का आधार ज्ञान है। इसलिए इस देश में ज्ञान को सबसे महत्त्वपूर्ण माना गया है- 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।' भारत में ऋषि ऋण की संकल्पना ज्ञान की उपासना की अवधारणा है। इस देश में निष्कारण छः अंगों सहित वेद का अध्ययन करना चाहिए, ऐसा उपदेश दिया गया- 'निष्कारणेन षडङ्गों वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।' ज्ञानविहीन मनुष्य की तुलना पशु से की गयी है- 'विद्याविहीनः पशुः।' इस देश की परम्परा ने दो प्रकार के ज्ञान की चर्चा की है- नित्य एवं अनित्य अथवा परा एवं अपरा। परा विद्या में आत्मविद्या एवं अपरा विद्या में समस्त भौतिक विद्याओं का समावेश हो जाता है। इन दोनों विद्याओं के अध्ययन के लिए प्रेरित किया गया है- 'द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैव अपरा च।' आज संसार की समूची प्रतिभा केवल एक ही कार्य में लगी हुई है। वह कार्य है

भौतिक संसार को पूर्ण विकास तक ले जाना। इसके लिए हम संसार की छोटी से छोटी बातों की जानकारी संगृहीत कर रहे हैं। जिस प्रकार हमारा बाह्य जगत् है, भौतिक संसार है उसी प्रकार हमारा आन्तरिक जगत् है, अभौतिक संसार है। जिस प्रकार हम भौतिक विकास की श्रृंखलाओं का अध्ययन कर रहे हैं उसी प्रकार हमें अभौतिक अर्थात् आन्तरिक जगत् का भी अध्ययन करना आवश्यक है। भारत में दोनों प्रकार की विद्याओं के अध्ययन की परम्परा है।

योग शब्द संस्कृत भाषा की युज् धातु में घञ् प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार यह तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है- युज् समाधौ = समाधि, युजिर् योगे = जोड़ और युज् संयमने = सामंजस्य। योग का वैयाकरण भले ही समाधि, संयोग या संयम का अर्थ दे, किन्तु क्रियात्मक - दृष्टि से रूढ़ि में तो साधन का ही नाम योग है। अतः अनन्त साधनों यानी योगों की परिकल्पना है।

योग का इतिहास अति प्राचीन है वैदिक ऋषियों ने योग विद्या का आविष्कार किया। कुछ विद्वानों कि मान्यता है कि वैदिक मंत्रों की रचना योगाभ्यास की उच्चतम भूमिकाओं का ही परिणाम है। योग उच्चतम अवस्था समाधि है। उस समाधि अवस्था में सत्य दर्शन की क्षमता जिन्हें प्राप्त हुई वे ऋषि थे। अतः ऋषियों को मंत्रद्रष्टा कहा गया। सत्य दर्शन की अभिलाषा मानव का सहज धर्म है। भारतीय साधना के क्षेत्र में सत्य की जिज्ञासा सदैव रही है। सत्य ही सर्व साधनाओं का साध्य रहा है। अतः भारतीय साधना के प्रत्येक क्षेत्र में 'योग' का सर्वोच्च स्थान है। अविद्या के प्रभाव से मानव का चित् स्वभावतः बहुमुखी हो जाता है। इस बहुमुखी चित् को अंतर मुखी करने का प्रयत्न 'योग' के द्वारा होता है। कर्म के मार्ग से हो, चाहे ज्ञान के मार्ग से अथवा भक्ति मार्ग से हो अथवा अन्य किसी उपाय से चित्त की एकाग्रता का संपादन साध्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक है, एकाग्रता को उच्च अवस्था ही समाधि है। इस समाधि अवस्था में ही सत्य के दर्शन होते हैं यही 'योग' का परम उद्देश्य है। 'योग' शब्द संस्कृत के 'युज्' धातु से बना है जिसका अर्थ है युक्त होना, मिलना, संयुक्त होना इत्यादि। योग दर्शन भारतीय षड्दर्शनों में से एक है। 'महर्षि पतंजलि' इस योग दर्शन के रचयिता है। इसके इस योग के पुरातन वक्ता 'हिरण्यगर्भ' है। इसका मूल रूप वैदिक संहिताओं में सूत्रवत है श्रीमद्भगवद् गीता समता में ही साधन की पूर्णता मानती है।

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

- **श्रीमद्भगवद्गीता २.४८**

मनुष्य वर्तमान में ही पुण्य और पाप दोनों से रहित हो जाता है अतः तू योग (समता) में लग जा, क्योंकि कर्मों की अर्थात् समता से युक्त कुशलता ही 'योग' है।

पातंजल दर्शन में चित्तवृत्तिओ के निरोध को 'योग' कहा गया है।

''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''

योग प्राचीन भारतीय दार्शनिक परम्परा और संस्कृति की अमूल्य देन है। भारतीय परम्परा की यह विशिष्टता है कि यह जीवन की समस्याओं का मात्र सैद्धान्तिक विवेचन नहीं करता बल्कि उसका व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत करता है और यह समाधान तात्कालिक न होकर शाश्वत होता है और इस शाश्वत समाधान के रूप में यहाँ मुक्ति या मोक्ष ही जीवन का चरम लक्ष्य है। मोक्ष की प्राप्ति से जीवन के दु:खों का नाश हो जाता है। योग का प्राचीन लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति है। इसी के लिए साधक उसकी साधना करते थे। इसे ही निर्वाण, कैवल्य आदि नाम दिये गए हैं। इसे प्राप्त करके जीवात्मा समस्त दु:खों से दूर हो जाता है। वह समस्त क्लेशों, बंधनों, वासनाओं से मुक्त हो जाता है। योगाभ्यास का उद्देश्य सभी त्रिविध प्रकार के दु:खों से आत्यन्तिक निवृत्ति प्राप्त करना है। भारतीय चिंतन परम्परा के अनुसार, यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है, परम पुरुषार्थ है।

हम योग का प्राय: संकुचित अर्थ ग्रहण करते हैं, किन्तु योग एक बहुआयामी शब्द है। इस योग ने हमे वैश्विक स्तर पर पहचान दिलाई है। 21 जून को सम्पूर्ण विश्व में योग दिवस मनाया जाता है। 'युज्यते अनेन इति योग:' अर्थात् जिसके द्वारा जोड़ा जाए वह योग है। आचार्य पतंजलि ने इसका शास्त्रीय अर्थ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' बताया तो श्रीकृष्ण ने 'कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग' के बारे में बताकर सम्पूर्ण मानवजीवन के उद्देश्य को ही तीन योगों में बाँट दिया। इस प्रकार योग व्यक्ति को ब्रह्मांड से, आत्मा को परमात्मा से व साधक को साध्य से जोड़ने का साधन है इसके अतिरिक्त मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग भी योग की ही विधाएं है, जिनमे एक-एक पर विस्तृत शोधकार्य संभव है। योगी के लिए शरीरस्थ 9 चक्र, 11 आधारों, 3 लक्ष्यों, 5 आकाशों का ज्ञान आवश्यक है।

नवचक्रं कलाधारं त्रिलक्ष्यं व्योमपंचकम् ।
सम्यगेतन्न जानाति स योगी नामधारक:॥

भारतीय सभ्यता व संस्कृति के अभ्युदय से ही भारतीय अध्यात्मिक साधना में योग एवं उसका महत्व स्वीकार्य है। भारतीय मूल की सभी आगम-निगम, वैदिक-अवैदिक, साधना-परंपराओं में न्यूनाधिक रूप में अथवा किसी न किसी रूप में योग की स्वीकृति और देशना निरंतर मिलती है। यद्यपि एक संपूर्ण विद्या के रूप में योग साधना की दो समानांतर धाराएं पतंजलि द्वारा प्रवर्तित पतंजलि योग दर्शन एवं महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ द्वारा प्रतिस्थापित नाथ योग क्रियात्मक योग है। दोनों योग पद्धतियां एक दूसरे के पूरक हैं। महर्षि पतंजलि द्वारा प्रवर्तित योग दर्शन जहां इसका सिद्धांत एक पक्ष प्रस्तुत करता है वही महायोगी गुरु श्रीगोरक्षनाथ द्वारा अपनी साधना पद्धति द्वारा इसका व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है। वह कहीं भी एक दूसरे का खंडन नहीं करती। वस्तुत: जब पतंजलि योग ऋषि-मुनियों, तपस्वियों के आश्रम तक सीमित हो गया था, सामान्य जन के लिए आसानी से सुलभ हो सके इसके लिए महायोगी गुरु गोरक्षनाथ ने योगियों सहित जन सामान्य के द्वार तक पहुंचाया। महायोगी श्रीगोरक्षनाथ जी भारत सहित दुनिया में सर्वस्वीकार्य प्रचलित योग साधना के प्रमुख आचार्य हैं।

योग भारतीय सनातन धर्म-दर्शन एवं ज्ञान परंपरा की अमूल्य निधि है, इसका मूल रूप वैदिक संहिताओं में सूचिबद्ध मिलता है। वेदों में योग का प्रतिपादन करने वाले अनेक मंत्र भी उपलब्ध है, वैदिक ग्रंथों की ही भांति उपनिषद्, दर्शन, पुराण व स्मृतियां आदि ग्रंथों में भी योग के जहां-तहां उल्लेख अक्सर प्राप्त होते हैं। केवल योग से ही विशेष संबंध रखने वाले लगभग 20 उपनिषदों का संग्रह योग-उपनिषद् संग्रह नाम से प्रकाशित है। महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ जी द्वारा प्रवर्तित क्रियात्मक योग को जन-जन तक पहुंचाने के अभियान का प्रमुख उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र को निरोगी काया देना है। भारतीय धर्म साधना में योग मार्ग के उन्नायक नाथ पंथ के महायोगी गुरु श्री गोरक्षनाथ जी का व्यक्तित्व अप्रतिम है। वे युग प्रवाह को मोड़ने वाले परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने वाले परंपरागत विचार प्रवाह को मथ कर उसके भीतर से सर्व युगीन तत्व को प्रकट करने वाले साधक और विचारक रहें हैं। गोरक्षनाथ ने योग-विद्या को अपनी साधना से न केवल समृद्ध किया बल्कि भारतीय प्रायदीप के आध्यात्मिक-सामाजिक पुनर्जागरण का सिद्धमार्ग योगमार्ग योग-सम्प्रदाय का प्रचार किया। नाथ पंथियों ने योग को अनुभवजन्य धरातल दिया। श्रीगोरक्षनाथ जी द्वारा जलायी गयी अखंड धूनी आज भी प्रज्वलित है और इस अखंड दीप का प्रकाश क्रियायोग के महत्व को वैश्विक आयाम दिया।

महायोगी गोरखनाथ जी महाराज सामान्य मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य सत्य की खोज और अध्यात्म को मानते थे। महाराज जी योग के प्रबल हिमायती थे, उन्होंने आत्म निश्चयी नैतिक जीवन एवं आत्मानुशासन को समाधि की अवस्था में पहुंचने का माध्यम मानते थे। वस्तुतः कुंडलिनी ही उर्ध्वमुख होती है। मानव जीवन में योग की आवश्यकता और महत्व को समझने की प्रेरणा देने के उद्देश्य से चतुर्दिक भ्रमण करते रहे, अपने चमत्कारी शाक्यिों से ईश्वरीय शक्ति और अस्तित्व का बोध जनमानस को कराते रहे।

गोरखनाथजी व्यक्ति को योग साधाना के महत्त्व पर उपदेश देते हुए कहते हैं-

हसिबा षेलिबा रहिबा संग, काम-क्रोध न करिबा संग।
हसिबा षेलिबा गाइबा गीत, दिढ़ करि राषि आपना चीत॥
हसिबा षेलिबा धारिबा ध्यान, अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियान।
हसै षेलै न करै मन भंग, ते निहचल सदा नाथ के संग॥

मन को लौकिक विषयों में खो जाने तथा इधर-उधर भटकन से बचाकर एवं सुस्थिर करके साधक जब मन के प्रभाव से मुक्त हो जाता है तो वह परमतत्त्व का अनुभव ही परम आनंद का अनुभव है।

भारतीय शिक्षण-परंपरा के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद याद आते हैं। वैश्विक पैमाने पर शिक्षा के संदर्भ में बात करने वाले प्रथम व्यक्ति के रूप स्वामी विवेकानन्द हैं। वे बार-बार कहते हैं कि 'शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।' अब हम अपनी शिक्षा के चहुँओर कुछ देखें तो क्या वह पूर्णता देती है? पूर्णता का तात्पर्य यह नहीं है कि वह सर्वज्ञता को देती है। पूर्णता का तात्पर्य यह

नहीं है कि एक ही व्यक्ति भौतिकीशास्त्र, रसायनशास्त्र, जीव विज्ञान और प्राणी विज्ञान को जानेगा, वही अच्छी कविता करेगा, वही अच्छा उपन्यास भी लिखेगा, वही अच्छा वक्ता भी होगा। सभी प्रकार के शिल्प, कौशल, साहित्य, संगीत और कला को जानने वाला व्यक्ति पूर्ण है। पूर्णता का तात्पर्य है–मनुष्य होने की जो कसौटियाँ हैं–उन कसौटियों के अनुरूप मनुष्य का निर्माण करना। अतीत से लेकर वर्तमान तक योग की महिमा में अभिवृद्धि होती रही है। योग की अवधारणा एवं उसके क्रियात्मक पहलुओं में परिवर्तन और परिवर्धन के अनेक रूप समाहित हुए हैं लेकिन आज भी इस मान्यता से शायद ही कोई योग–मर्मज्ञ असहमत हो कि जब तक मनुष्य की आंतरिक मनोदशा की जटिलताओं का समाधान नहीं हो जाता तब तक वह पूर्ण संतुष्ट, शांत, तृप्त एवं आनंदपूर्ण नहीं हो पाता है। भारतीय चिंतकों ने कठिन तपस्या एवं शोध करके मानव के अंतर्जगत् की इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है, जिसका नाम योग है। भारतीय चिंतन परंपरा में योग सिर्फ भारत ही नहीं बल्कि विश्व मानवता को अनुपम देन है। भारतीय ज्ञान परंपरा को भारतीय शिक्षा पद्धति में यथोचित स्थान दिलाने का कार्य अधूरा है। 'भारत भारती' को पुनः प्रतिष्ठित करने का संकल्प पूर्ण करना है।

■

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं गुरु गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित आत्म तत्त्व

*डॉ अभिषेक पाण्डेय

महायोगी गुरु गोरखनाथ के दर्शन में आत्मा का स्वरूप अपनी विशिष्ट महत्ता रखते हुए भी भारतीय दर्शन के परम्परागत स्वरूप से बहुत भिन्न नहीं है। भारत वर्ष के अन्यान्य दर्शनों के अध्ययनोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आध्यात्मिक प्रवृत्ति ही इन दर्शनों की मुख्य विशेषता है। आध्यात्मिक प्रवृत्ति के अध्ययन के अन्तर्गत सभी भारतीय दर्शन एकमात्र चार्वाक दर्शन को छोड़कर आत्मा के स्वरूप का ज्ञान एवं तत्व साक्षात्कार के साधन की खोज में निरन्तर मननशील दिखलाई पड़ते हैं। यही कारण है कि अनेक विदेशी आक्रमणों से पदाक्रान्त होने पर भी इस देश की संस्कृति का गौरव सदैव ही सर्वोच्च शिखर पर रहा ।

आत्मा विषयक चिन्तन हमें उपनिषद् काल से मिलता है, परन्तु इसकी सम्यक् मीमांसा एवं तर्क सिद्धि अद्वैत वेदान्त से प्रारम्भ हुई। आत्मा के सन्दर्भ में अद्वैत वेदान्त के प्रणेता शंकराचार्य एवं गोरखनाथ के विचारों में बहुत हद तक साम्य है। महायोगी गोरखनाथ ने आत्मा से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किये हैं, वे उपनिषद् ग्रन्थों एवं शंकर के अद्वैत वेदान्त दर्शन की परम्परा का ही विकास है। इसलिए गोरक्षदर्शन में निरूपित आत्म तत्व के विवेचन से पूर्व अद्वैत वेदान्त में निरूपित आत्म तत्व का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है।

उपनिषदों में प्रतिपादित आत्म-तत्व

वेद के आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण भाग उपनिषद् हैं। इन ग्रन्थरत्नों में वैदिक ऋषियों ने आध्यात्मिक विद्या के गूढ़तम रहस्यों का विशद विवेचन किया है। भारतीय तत्व ज्ञान का मूल स्रोत इन्ही उपनिषदों में हैं। जीवन के गूढ़तम रहस्यों के अध्ययन के क्रम में ही उपनिषदों में आत्मा के स्वरूप का विवेचन तात्विकता के साथ किया गया है । क्या आत्मा की सत्ता इसी जीवन काल तक विद्यमान रहती है अथवा जीवन की समाप्ति के पश्चात् भी उसका अस्तित्व बना रहता है इस समस्या की मीमांसा कठोपनिषद् में नचिकेता यम संवाद के माध्यम से बड़ी सुन्दर रीति से व्यक्त की गई है, जो निम्न श्लोक से स्पष्ट हो जाती है

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथीं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥

इस श्लोक में आत्मा को रथी बतलाकर यम ने आत्मा की सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

आत्म-तत्व के सम्बन्ध में विभिन्न उपनिषदों में निम्न विचार व्यक्त किये गये हैं। इसी आत्म-तत्व को कहीं ब्रह्म, कहीं आत्मा और कही केवल सत् कहा गया है।

*व्याकरण विभागाध्यक्ष श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ (स्नातकोत्तर महाविद्यालय) गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर

उदाहरणार्थ ऐतरेय एवं बृहदारण्य में कहा गया है कि पहले आदि में केवल वह आत्मा मात्र था । छांदोग्य उपनिषद् में उल्लिखित है कि यह सब आत्मा ही है। इसी तरह छांदोग्य कहता है कि आदि में केवल सत् था, दूसरा कुछ नहीं था। बृहदारण्यक पुनः कहता है आत्मा को जान लेने से सब कुछ ज्ञात हो जाता है। छांदोग्य एवं मुण्डक में कहा गया है कि यह सब कुछ ब्रह्म है ।

इन सब वाक्यों में ब्रह्म तथा आत्मा को लगभग एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। कहीं कहीं तो और स्पष्ट शब्दों में कहा गया है 'यह आत्मा ही ब्रह्म है' कि 'मैं ब्रह्म हूँ।' श्वेताश्वतरोपनिषद् कहता है कि वह अणु से भी अणु महान् आत्मा इस जीव के अन्तःकरण में स्थित है।

इस प्रकार उपनिषदों में आत्मा के सम्बन्ध में जो विचार एवं विश्लेषण किया गया है उसमें बाहरी उपाधियाँ पूर्णरूपेण छूट गई हैं और केवल असली तत्व ही रह गये हैं। शरीर, मन, प्राण, बुद्धि तथा इनसे उत्पन्न होने वाले आनन्द की समीक्षा कर इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ये सभी तत्व आत्मा के क्षणभंगुर परिवर्तनशील रूप हैं, आत्मा के मूल तत्त्व कदापि नहीं। ये समस्त कोष या बाहरी आवरण शरीर, प्राण, मन, बुद्धि आदि मात्र है और इन्हीं के भीतर असली तत्व छिपा रहता है, जो आत्म तत्त्व है। सत्य, अनन्त एवं ज्ञान स्वरूप होने के कारण जो आत्मा मनुष्य में है वही सभी भूतों में विद्यमान है। उपनिषदों में आत्मज्ञान को सर्वश्रेष्ठ ज्ञान कहा गया है जिसे परा विद्या के नाम से जाना जाता है और अन्य सभी विद्यायें अपरा विद्या हैं।

गोरक्षनाथ द्वारा प्रतिपादित आत्म तत्व–

महायोगी गोरखनाथ उपनिषद् ग्रन्थों एवं अद्वैत वेदान्त दर्शन की भाँति एक ही तत्व को उद्घाटित करते हैं जो उनके अनुसार अद्वैत पारमार्थिक ब्रह्म शिव है। यह शिव ही है जो शक्ति से युक्त होकर स्वयं को ब्रह्माण्ड शरीर के रूप में प्रगट करते हैं। यह ब्रह्माण्ड अनन्त विभिन्नताओं और व्यवस्था से युक्त है। जिस प्रकार शंकराचार्य ब्रह्म एवं आत्मा को एक ही तत्व मानते हैं ठीक उसी प्रकार गोरखनाथ शिव जिसे शंकराचार्य ब्रह्म कहते हैं, एवं आत्मा की एकता स्थापित करते हैं। उन्होंने शिव को ही परम तत्व माना है। जो अपनी शक्ति द्वारा स्वयं को विभिन्न रूपों में प्रगट करता है तथा व्यक्ति शरीरों में जीवात्माओं के रूप में निवास करता है। इस प्रकार इस काल–दिकाश्रित ब्रह्माण्ड व्यवस्था में अथवा इससे परे जो कुछ है या जिसका भविष्य में होना सम्भव है वह सब कुछ शिव शक्ति की एक आत्माभिव्यक्ति है।

गोरखनाथ आत्मा और पुद्गल शरीर में कोई मूलभूत अंतर नहीं मानते । पुद्गल अथवा शरीर शिव की आत्माभिव्यक्ति का वैसा ही एक रूप है जैसा कि आत्मा अथवा जीव का। शिव ही प्रत्येक व्यष्टि शरीर में आत्मा के रूप में अवस्थित है। समस्त मानसिक, भौतिक शरीर शिव की विशिष्ट शारीरिक आत्माभिव्यक्तियाँ है। गोरखनाथ का स्पष्ट कथन है कि 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' अर्थात् यही शिव पिण्ड या पुद्गल अथवा भौतिक शरीर तथा ब्रह्माण्ड दोनों में व्याप्त है। इस प्रकार जीव एवं ब्रह्माण्ड इन दोनों की आत्मा शिव ही है।

'सिद्ध-सिद्धान्त-पद्धति' जो गोरख दर्शन को समझने का मूल ग्रन्थ है, उसके चतुर्थ अध्याय में परमात्मा शिव के प्रकाश एवं विमर्श शक्ति के विवेचनोपरान्त अन्त में गोरखनाथ कहते हैं- 'विमुक्ता भवति परापरविमर्शरूपिणी। सम्वित् नानाशक्तिरूपेण निखिलपिण्डाधारत्वेन वर्तते'। अर्थात् एक स्वयं प्रकाश संवित् स्वयं को पर विमर्श शक्ति और अपर विमर्श शक्ति के रूप में प्रकट करती है। पुनः स्वयं को ही व्यावहारिक जगत् में असंख्य पिण्डों के आधार रूप में स्थित है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परमात्मा शिव ही असंख्य रूपों में समस्त पिण्डों का एकमात्र आधाार, प्रकाशक, भोक्ता, शासक एवं आत्म-दर्शक है। अपनी विमर्श शक्ति के द्वारा अपने परमार्थिक सच्चिदानन्द स्वरूप से इन समस्त पिण्डों के अनन्त रूपों को व्यक्त करते हैं तथा अपनी प्रकाश शक्ति से वे उन सब में उनके प्रकाशक आत्माओं के रूप में निवास कर स्वयं को अभिव्यक्तियों की विभिन्न परिस्थितियों, सीमाओं तथा सत्-चित्-आनन्द के विभिन्न स्तरों में विभिन्नताओं का आनन्द भोगते हैं। शिव जितने पर-पिण्ड, अनादि-पिण्ड, महासाकार-पिण्ड की आत्मा हैं, उतने ही देवताओं मनुष्यों, पशु-पक्षियों तथा कीटाणुओं के शरीरों तथा बाह्यरूप से अनात्म तथा निर्जीव प्रतीत होने वाले भौतिक शरीरों के भी आत्मा हैं। प्रत्येक प्रापंचिक सत्ता में शिव आत्मा रूप में निवास करते हैं। शिव ही घट-घट में आत्मा के रूप में विराजते हैं -

'एवं सर्वदेहेषु विश्वरूपः परमात्मा अखण्डस्वभावेन घटे घटे चित् स्वरूपी तिष्ठति'

अर्थात् इस तरह सभी देहों में विश्वरूप परमात्मा परमेश्वर अखण्ड स्वरूप घट-घट में चिद्रूप में व्याप्त हैं ।

गोरखनाथ के अनुसार परमात्मा स्वयं व्यष्टि शरीरों में जीवात्माओं के रूप में विराजमान है। अपने मूल स्वरूप में कोई भी जीवात्मा बंधन, दुःख, इच्छा, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि के कष्ट वहन नहीं करता। प्रत्येक जीवात्मा अपने शुद्ध स्वरूप में परमात्मा के पूर्ण सच्चिदानन्द का सच्चा भागीदार होता है।

यद्यपि जीव व शरीर दोनों ही पारमार्थिक परमात्मा की प्रापंचिक आत्माभिव्यक्तियाँ है तथा एक दूसरे से अभिन्न है तथापि व्यावहारिक दृष्टिकोण से दोनों शरीरों में पर्याप्त अन्तर है। स्पष्टतया जीवन परमात्मा की एक अध्यात्मिक आत्माभिव्यक्ति है, जबकि शरीर भौतिक अभिव्यक्ति है। शरीर एक सीमित क्लिष्ट भौतिक इकाई प्रतीत होती हैं, जो दिक् में स्थान घेरती है तथा काल में विभिन्न परिवर्तनों के मध्य आगे बढ़ती है। जीवात्मा काल-दिक् के गुणों से रहित एक सरल, स्वयं प्रकाश्य आध्यात्मिक इकाई प्रतीत होती है। जीवात्मा, यद्यपि व्यष्टि शरीर से घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित होती है, तथापि यह शरीर के किसी विशेष भाग में निवास नहीं करती, बल्कि जीवात्मा की उपस्थिति शरीर के प्रत्येक भाग में अनुभव की जा सकती है। यह सम्पूर्ण शरीर से व शरीर के प्रत्येक भाग से सन्नद्ध है। शरीर चाहे जिस परिवर्तन के बीच से चले इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। स्वयं प्रकाश्य आत्मा की यह एकरूपता तथा विशिष्टता ही विभिन्न परिवर्तनों, रूपान्तरों, संघटनों

व विघटनों से होकर विकसित होने वाले संगठित शरीर को सापेक्षिक एकता निरन्तरता व एकरूपता प्रदान करती है। बीजरूप से लेकर आश्चर्यजनक क्लिष्ट शरीर की रचना तक यही जीवात्मा इस शरीर पर शासन करती है तथा इस शरीर को व्यक्तित्व प्रदान करती है ।

गोरख दर्शन में आत्मा को जो शिव का एक रूप है, शरीर का स्वामी शासक बताया गया है। भौतिक शरीर के समस्त अंगों के संचालन का शक्ति केन्द्र यह जीवात्मा ही है। आत्मा का कोई आकार या विशिष्ट स्थान नहीं है। इसी कारण नाथ दर्शन में यह विवेचन करना निरर्थक माना गया है कि यह अणु-परमाणु है अथवा अंगुष्ठ परिमाण है, मध्यम परिमाण है अथवा विभु-परिमाण है। आत्मा आकार रहित, स्वरूपरहित व घनत्व रहित है और इसे समाधि, ध्यान व धारणा के अभ्यास से देखा या माना जा सकता है। आत्मा स्थूल भौतिक शरीर से केवल पृथक् ही नहीं बल्कि प्राण, मनस्, अहंकार और बुद्धि से भी पृथक् अथवा भिन्न है। वे सब प्राण, मनस्, अहंकार और बुद्धि प्रापंचिक ब्रह्माण्ड में इसकी आत्माभिव्यक्ति और आत्मदर्शन के कारण उपाधियाँ व साधन हैं। आत्मा इन समस्त का केन्द्र आधार तथा स्वामी है। आत्मा का शुद्ध आध्यात्मिक रूप प्रापंचिक अभिव्यक्ति में व्यक्तित्वधारी प्रतीत होने वाला होने पर भी उन सबसे परे, सबमें निहित तथा सबसे सम्बन्धित भी है। प्राण, मनस्, अहंकार और बुद्धि के समस्त दृश्य या क्रिया-कलाप आत्मा के लिए घटित होते हैं और आत्मा उनका निद्रा-रहित द्रष्टा, साक्षी, प्रकाशक एवं नियन्ता है। यह ज्ञान, कर्म, इच्छा, अनुभूति, पीड़ा आदि समस्त मानसिक प्रक्रियाओं का साक्षी है तथा उन सबको व्यावहारिक चेतना के समक्ष प्रकट करती है, किन्तु स्वयं किसी भी प्रकार से इन प्रक्रियाओं से विचलित या उद्वेलित या प्रभावित नहीं होती है।

समस्त व्यावहारिक परिस्थितियों में आत्मा अपनी मौलिक पूर्णता से युक्त, शान्त तथा स्थिर, पूर्णतया आत्म-संतुष्ट और आत्म-चेतन, पूर्णतया पारमार्थिक, काल-दिक् से परे चरम अवस्था में स्थित रहती है। यद्यपि मानसिक भौतिक शरीर में यह व्याप्त प्रतीत होती है, तथा आत्मा अपने आप में निराकार है, व्यक्तित्व के समस्त भाव से मुक्त है, क्योंकि यह शरीर की सीमाओं, दशाओं, सुखों, दुःखों, अपूर्णताओं, अभिलाषाओं तथा प्राप्तियों व असफलताओं आदि में भाग नहीं लेती है। इसी प्रकार की अवधारणा भगवत्गीता में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन के आत्मा सम्बन्धी सन्देह को दूर करने के लिए व्यक्त की गई है:-

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतो यं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह आत्मा अजन्मा और अस्तित्त्ववान् है। यह नित्य तथा प्राचीन भी है। शरीर समाप्त हो जाता है परन्तु आत्मा कभी भी नष्ट नहीं होती ।

कठोपनिषद् में भी आत्मा सम्बन्धी यही विचार व्यक्त किया गया है- न बधेनासौ

हन्यते। छान्दोग्य कहता है कि आत्मा दिव्य रूप में सदा रहने वाली है और इसे अपना अस्तित्व परमात्मा से प्राप्त होता है। गोरखनाथ कहते हैं-

गगने न गोपतं तेणे न सोषत पवने न पेठंत बाई।
मही भारे न भाणंत उदके न डूबन्त कह्यौ तो को पतिआई ॥

दूसरे शब्दों में, आत्मा सर्वव्यापक है, सर्वत्र है, अविनाशी है और साक्षात् शिव का ही अद्वैत रूप है। यद्यपि आकाश का अमिट विस्तार है परन्तु यह असीम और अनन्त आत्मा को अपने में आविष्ट नहीं करती है। अर्थात् आकाश गगन से परे है। आत्मा को तेज अग्नि के द्वारा शोषित नहीं किया जाता है, क्योंकि आत्म-शाक्ति अपने आप में इतनी तेजोमयी है कि अग्नि उसे अपने तेज में आत्मसात् ही नहीं कर सकती है। इसी प्रकार वायु कितना ही शक्तिशाली हो उसमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह आत्मा को इधर-उधर उड़ा कर अस्थिर कर दे। यह आत्म-तत्व जल में भी विलीन होकर अपना अस्तित्व नहीं खोता। इसी तरह पृथ्वी की भार-शक्ति इस आत्मा को खंडित नहीं कर सकती। इन सम्पूर्ण तत्वों अग्नि, आकाश, वायु, जल और पृथ्वी से आत्मा परे चिन्मय परम सत्ता है जिसका अनुभव किया जा सकता है, आत्मबोध अथवा आत्म-ज्ञान बुद्धि से परे है। गुरु की कृपा से बुद्धि योग के सहारे आत्मा के साक्षात्कार का सुयोग साधक को प्राप्त होता है। आत्म तत्त्व का विचार करने से यह पता चल जाता है कि सारा जगत् ब्रह्म शिव का प्रतिबिम्ब है। इसलिए गोरखनाथ जी कहते हैं कि जिस तरह जल में चन्द्रमा का जो प्रतिविम्ब दिखाई देता है वह वास्तविक चन्द्रमा नहीं है। चन्द्रमा पर दृष्टि रखने से ही चन्द्रमा का वास्तविक रूप प्रगट होता है। इसी प्रकार आत्मा पर दृष्टि रखने पर समस्त जगत् परमात्मा के प्रतिविम्ब के रूप में दृश्य अथवा अभिव्यक्त होता है। जगत ब्रह्म नहीं है बल्कि ब्रह्म से प्रतिबिम्बित दृश्य मात्र है। इसीलिए वे सुझाव देते हैं कि पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को भौतिक विधियों से प्रत्याहारित कर आत्मा के चिंतन में मोड़ना चाहिए।

महायोगी गोरखनाथ का कथन है कि शिव जो कि व्यष्टि पिण्ड में आत्मा के रूप में निवास करते हैं यह आन्तरिक ज्योति हैं, यह सदा बने रहते है और जन्म-जन्मान्तर में अनश्वर है। यह जीव, का जो आत्मिक व्यष्टि व मूल तत्त्व हैं। गोरखनाथ के अनुसार मनुष्य लोक प्रपंचों तथा विभिन्न प्रकार के क्लेशों में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है और उसे मूल आत्मा का ज्ञान नहीं प्राप्त होता, परन्तु जब वही योग-मार्ग द्वारा आत्मा का विश्व के साथ पूर्ण एकत्व स्थापित कर लेता है, तब वह उच्च आत्मिक अवस्था में पहुँच जाता है जो उसकी भवितव्यता है, और जब तक वह दशा नहीं आती तब तक जरा-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है।

महायोगी गोरखनाथ कहते हैं-

पर्यालोचनविमुखे वस्तुस्वभावस्यात्मनो हृदये ।
शंका विषवेगेनेव संसारभयेनोद्भवति लोकः॥

अर्थात् जीवात्मा आत्मवस्तु के चिन्तन से विमुख रह कर, जन्म–मरणमय रूप विश्व प्रपंच में अनुरक्त आत्मविमुख, संसारमयरूप शंका विषयवेग से सद्वस्तु के प्रति भ्रमित अथवा मोहित रहता है, उसे आत्म–विवेक नहीं रहता। उसका यह मोह सद्वस्तु परमात्मतत्त्व के सम्बन्ध में संशय के विषयवेग का ही परिणाम है। स्पष्ट है कि जब साधक आत्मचिन्तन करता है, परमशिव के ध्यान में व्यस्त रहता है, तब उसे जन्म–मरणरूप लोक–व्यवहार रंचमात्र भी भयभीत नहीं कर पाते हैं। जीव के भ्रमित होने की बात गोरखनाथ ने विवेकमार्तण्ड में भी कही है और बताया है अनेकानेक मोह–फांसों में बंधा होने के कारण वह आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता– यावज्जीवो भ्रमत्येव तावत्तत्वं न विन्दति। अथवा जब तक जीवात्मा, परमात्मा शिव के चिन्तन में तत्पर नहीं होता, तब तक वह संसार बंधन विश्व प्रपंच में भ्रमित और सम्मोहित होकर परमतत्त्व आत्मा से विमुख रहता है। परमात्व तत्व से विमुख रहना ही अनात्मचिंतन कहा गया है। इसी कारण गोरखनाथ कहते है–

''बहिरभ्यन्तरे श्रेष्ठं पूजनीयं प्रयत्नतः ।
ततः श्रेष्ठतमं ह्येतन्नान्यदस्ति मतं मम॥
आत्मसंस्थं शिवव्यक्त्वात् बहिःस्थं यः समर्चयेत् ।
हस्तस्थे पिण्डमुत्सृज्य भ्रमते जीविताशया ॥''

यह आत्मा ही बाहर और भीतर प्रयत्नपूर्वक पूजन के योग्य है, मेरे विचार से यही सबसे श्रेष्ठ योग है। इससे उत्तम दूसरा योग है ही नहीं । जो साधक अपने अन्तरात्मा में स्थित अभिव्यक्त शिव का त्याग कर बाहर ही बाहर देव का अर्चन करता है, वह करस्थ हाथ में स्थित देवता का त्याग कर इधर–उधर उसकी खोज में भटकता रहता है। ॥ इति शम्॥

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1– कठोपनिषद्
2– गोरख बानी
3– गोरख दर्शन, अक्षय कुमार बनर्जी
4– श्रीमद्भगवद्गीता
5– छांदोग्योपनिषद्
6– तैत्तिरीयोपनिषद्
7– मुण्डकोपनिषद्
8– महार्थमंजरी
9– बृहदारण्यकोपनिषद्
10– विवेक मार्तण्ड
11– श्वेताश्वतरोपनिषद्
12– शिव संहिता

■

संस्कृत और भारतीय संस्कृति : आधार, प्रभाव और वैश्विक महत्त्व

*डॉ. चन्द्रकान्त दत्त शुक्ल

संस्कृत मानवीय सभ्यता और ज्ञान परम्परा का सर्वप्राचीन भाषिक साधन है, लिखित साहित्यिक विरासत है, भारत की आत्मा है। यह भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, अपितु भारतीय संस्कृति, दर्शन, विज्ञान, कला और धर्म की मूल है। भारतीय संस्कृति की जितनी भी ज्ञान-धााराएँ हैं- वेद, वेदांग, उपनिषद्, पुराण, महाकाव्य, नाटक, आचारशास्त्र, आयुर्वेद, योग, वास्तु, शिल्प, कला- सब संस्कृत में ही निबद्ध हैं। इसलिए यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि ''संस्कृत ही भारतीय संस्कृति की जननी, संवाहिका, और संरक्षिका'' है।

संस्कृत का अर्थ और स्वरूप

'संस्कृत' शब्द 'सम् उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्त' प्रत्यय (सम्+सुट्+क्त) से बना है, जिसका अर्थ है - संस्कारित, परिष्कृत, सुसंस्कृत। यह केवल भाषा नहीं, अपितु संस्कारों से युक्त स्वस्थ अभिव्यक्ति है। संस्कृत का वैभव केवल उसके व्याकरण में नहीं, अपितु उसके द्वारा व्यक्त उच्च जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक दृष्टि में निहित है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति केवल किसी भूभाग की परम्परा नहीं, अपितु एक शाश्वत जीवन-दर्शन है जो धर्म, दर्शन, कला, आचार, विज्ञान, समाज और मानवता के समन्वय पर आश्रित है, इसकी मुख्य विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं-

आध्यात्मिकता - आत्मा और परमात्मा की एकता का भाव। सर्वं खल्विदं ब्रह्म। अयमात्मा ब्रह्म।

सर्वभूतहिताय - ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का आदर्श।

सत्य, अहिंसा, दया, करुणा, क्षमा, त्याग, संयम और परोपकार जैसे जीवन-मूल्य। ''परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'',

सामंजस्य की प्रवृत्ति - अनेकता में एकता। ''सङ्गच्छध्वं संवदध्वं'', सहनाववतु, सहनौ भुनक्तु।

कला और सौन्दर्य के प्रति अनुराग - नाट्य, संगीत, काव्य, चित्रकला इत्यादि में अभिव्यक्ति।

भारतीय संस्कृति की जननी

संस्कृत ही वह माध्यम है जिसने भारतीय संस्कृति के सभी अंगों को अभिव्यक्त और संरक्षित किया। वेदों से लेकर आधुनिक संस्कृत रचनाओं तक भारतीय संस्कृति

---

*सहायक आचार्य संस्कृत विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, मुहम्मदाबाद-गोहना मऊ उ.प्र.

का प्रत्येक सूत्र इसी भाषा में पल्लवित हुआ है।

धर्म और अध्यात्म का आधार

वेदों, उपनिषदों, गीता, ब्रह्मसूत्र आदि शास्त्रों ने भारतीय संस्कृति को धर्म और अध्यात्म का स्वरूप दिया। उपनिषदों का सन्देश – "अहं ब्रह्मास्मि", "तत्त्वमसि", "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" का भाव भारतीय जीवन में आत्मा और परमात्मा की एकता के रूप में स्थापित हुआ।

नैतिकता और मूल्य

हमारे संस्कृत साहित्य में सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा आदि नैतिक मूल्यों की निरन्तर शिक्षा दी गई है। मनुस्मृति का उद्घोष है "अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।" 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' इन्हीं मूल्यों ने भारतीय संस्कृति को चरित्र और संयम की संस्कृति बनाया।

कला और सौन्दर्य की संस्कृति

संस्कृत ने नाट्यशास्त्र (भरतमुनि), काव्यशास्त्र (आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ), और चित्रशास्त्र (शिल्पसूत्र) के माध्यम से सौन्दर्य का शास्त्रीय स्वरूप दिया। कालिदास के काव्य में यह सौन्दर्य सर्वोच्च रूप में दिखाई देता है- इनके अनुसार असली सौन्दर्य वह है जो किसी भी अलंकृत रूप से परे हो; जैसे कि "मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" (कमल भले ही शैवाल में लिपटा हो, फिर भी सुन्दर है) और "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्" (सुन्दर आकृतियों के लिए क्या सुशोभित नहीं करता?) आदि अनेक स्थल हैं जिनके पदे-पदे सौन्दर्य-दर्शन ने भारत की सांस्कृतिक चेतना को सुरुचिपूर्ण बनाया।

सामाजिक समरसता

संस्कृत संस्कृति ने समाज को वर्णचतुष्टय और आश्रमचतुष्टय' व्यवस्था के माध्यम से अनुशासन और कर्तव्य-बोध प्रदान किया। किन्तु इसका लक्ष्य भेदभाव नहीं, बल्कि कर्तव्य और समरसता था – "नायं जनो नान्यसुखेऽनुभवति।"- महाभारत।

लोक-मङ्गल की भावना

संस्कृत साहित्य का प्रत्येक ग्रन्थ "वसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः" की भावना से प्रेरित है। ये केवल धार्मिक-वाक्य नहीं, अपितु एक सांस्कृतिक संकल्प हैं। सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याणोपेत भाव हैं।

संस्कृत साहित्य में संस्कृति का प्रसार

वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य, नाटक, दर्शनादि सभी के माध्यम से संस्कृत संस्कृति का प्रसार हुआ। इन ग्रन्थों ने भारतीय समाज को आध्यात्मिक, नैतिक और कलात्मक दृष्टि से समुन्नत किया।

भारतीय संस्कृति के संरक्षण में संस्कृत की भूमिका

संस्कृत ने ज्ञान, अध्यात्म, शिक्षा, और राष्ट्रीय एकता के संरक्षण में प्रमुख भूमिका निभाई। यह भाषा भारत की विविधता में एकता का सूत्र बनी। आधुनिक काल में

भी संस्कृत और संस्कृति आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि ये विज्ञान और अध्यात्म का सन्तुलन सिखाती हैं, मानवता का सन्देश देती हैं, और जीवन में संयम व करुणा का मार्ग दिखाती हैं।

संस्कृत का वैश्विक महत्त्व

संस्कृत की वैज्ञानिकता ने उसे विश्वपटल पर प्रतिष्ठित किया है। आधुनिक विश्वविद्यालयों में संस्कृत अध्ययन बढ़ रहा है। योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तु, संगीत, दर्शनादि सभी का मूल संस्कृत में निहित है।

निष्कर्ष

संस्कृत और भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध शरीर और आत्मा के समान है। संस्कृत ने संस्कृति को विचार और भाषा दी, और संस्कृति ने संस्कृत को जीवन और विस्तार। संस्कृत के विना संस्कृति अधूरी है, और संस्कृति के विना संस्कृत, कहा भी गया है "भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा" (भारत की दो प्रतिष्ठा हैं संस्कृत तथा संस्कृति) ऐसे ही– "संस्कृतेन विना संस्कृतिः न भवति।"

(संस्कृत के बिना संस्कृति का अस्तित्व नहीं।) इति शम्।

■

काशी में निवास करने के नियम

*राजेश्वराचार्य संस्कृतम्

काशी (वाराणसी) में निवास करने वाले साधक अथवा गृहस्थ के लिए शास्त्रसम्मत नियम क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत हैं। ये नियम स्कन्दपुराण (काशीखण्ड), धर्मशास्त्र और परंपरागत आचार से नि:सृत हैं-

१. काशी निवास का संकल्प (आवश्यक) :

काशी में रहने से पूर्व यह भाव दृढ़ हो- मैं काशी को भोगभूमि नहीं, साधना-भूमि मानकर निवास कर रहा/रही हूँ।

नियम-

काशी में निवास को पर्यटन न बनाएं। "यह मेरा नगर नहीं, मैं इस नगर का हूँ" - यह भाव रखें।

२. प्रात:कालीन नियम :

गंगा काशी की जीवन-रेखा हैं। नियम- ब्रह्ममुहूर्त में उठना अत्यंत वांछनीय है। गंगा-दर्शन या गंगा-स्मरण अवश्य करें। स्नान के बाद मौन या जप कम से कम 108 बार अवश्य करें। **#**शास्त्रीय_भाव: गंङ्गादर्शनमात्रेण पापक्षयो भवेत्।

३. काशी विश्वनाथ स्मरण :

काशी विश्वनाथ काशी के हृदय हैं।

नियम- प्रतिदिन कम से कम मानसिक दर्शन। सोमवार या प्रदोष में विशेष स्मरण। अहंकार, प्रदर्शन और दिखावे से दूर रहना। यह माना जाता है कि काशी में निवास करना मतलब समझना चाहिए कि नित्यनिरंतर शिव का सान्निध्य मिल रहा है।

४. कालभैरव की आज्ञा में रहना (अत्यंत महत्वपूर्ण) :

कालभैरव मंदिर काशी के कोतवाल हैं।

नियम- काशी में रहकर भैरव का अनादर वर्जित है। मद, अहंकार, अन्याय, छल-इनसे दूर रहें। काशी में प्रवेश और निवास भैरव-स्मरण से शुद्ध माना गया है। शास्त्रीय उक्ति-भैरवाज्ञाविना काशी न वसति जन: कदाचन।

५. आचार शुद्धि के नियम :

काशी में आचरण ही साधना है।

 *वाराणसी/दिल्ली

नियम- असत्य, निंदा, छल, क्रोध से विशेष बचाव अतिभोजन, विलास और दिखावा त्याज्य, सरल वस्त्र, शुद्ध भाषा, संयमित व्यवहार यहाँ सामान्य पाप भी तीव्र फल देते हैं - यह शास्त्रीय चेतावनी है।

६. श्मशान संबंधी मर्यादा :

(मणिकर्णिका और हरिश्चंद्र श्मशान)- ये भय के नहीं, वैराग्य के गुरु हैं।

नियम- श्मशान का उपहास या असम्मान न करें। वहाँ मौन और गंभीर भाव रखें, मृत्यु-दर्शन को जीवन-बोध बनाएं, तमाशा नहीं। सुनसान स्थान को श्मशान कहते हैं। आजकल लोग वीडियोग्राफी दिखा-दिखा कर श्मशान घाटों पर भीड़ मचा दिए हैं। इससे बचना चाहिए।

७. दान और सेवा का नियम :

काशी में दान को मौन होकर और पात्र देखकर करें।

नियम- अन्नदान, जलदान, वस्त्रदान श्रेष्ठ हैं। दिखावे का दान निष्फल कहा गया है। साधु, ब्राह्मण, अतिथि- इनका सम्मान अनिवार्य रूप से करें।

८. काशी में वर्जित आचरण :

निषेध- काशी में रहकर घोर तामसिक जीवन न जीएं। नशा, हिंसा, अनैतिक व्यापार, धर्म का उपहास या अपमान न करें। शास्त्र कहते हैं- काशी पवित्र करती है, परंतु अहंकारी को शीघ्र दंडित भी करती है।

९. काशी निवासी का अन्तःभाव :

सच्चा काशी बट निवासी- मृत्यु से नहीं डरता है। जीवन को क्षणभंगुर जानता है और हर दिन को तैयारी मानता है, क्योंकि- काश्यां जीवन्मुक्तिः सम्भवति।

निष्कर्ष - काशी में निवास नियमों का बंधन नहीं, चेतना का अनुशासन है।

राष्ट्रसन्त ब्रह्मलीन महन्त अवेद्यनाथ जी महाराज

गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त योगी आदित्यनाथ जी महाराज

जातिव्यवस्था ईश्वर प्रदत्त अथवा मनुष्य निर्मित एक विश्लेषण

***डॉ. अभिषेक कुमार उपाध्याय**

आजकल सनातन धर्म संस्कृति एवं परम्परा के विषय में आए दिन कुछ न कुछ बोला और लिखा जा रहा है, ऐसा इसीलिए हो रहा है क्योंकि हमारे यहां अभिव्यक्ति की आजादी है, किसी भी समाज या व्यक्ति पर कुछ भी आरोप प्रत्यारोप की खुली छूट है। ऐसा इसीलिए कह रहा हूं कि जब से संविधान आया है तब से बहुत कुछ परिवर्तन हुए इसमें कुछ समाजहित भी हैं। आजकल किसी को कुछ भी बोलकर सोशल मीडिया पर बने रहने की एक बुरी आदत लग रही है उसी क्रम में कुछ प्रतिष्ठित दायित्वों पर आसीन लोगों द्वारा जाति व्यवस्था पर लगातार बोलकर समाज को दिग्भ्रमित करने का षडयंत्र किया जा रहा है जिसका दूरगामी परिणाम बहुत ही दुखदायी है। तो आइए इसे हम केवल आध्यात्मिक, सांस्कृतिक ढंग से ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक एवं तर्क की कसौटी पर आधारित परम्परा प्राप्त इस जातिगत व्यवस्था के विषय पर संवादात्मक व प्रश्नगत ढंग से विचार करते है ताकि समाज को इस विषय की सही जानकारी मिल सके, नहीं तो जिसको जो मन में आयेगा वही बोलेगा। यदि हमें सही जानकारी होगी तो ऐसे तथाकथित भड़काने वाले लोगों का विरोध करके सही जानकारी से समाज को अवगत करवाएंगे ताकि भविष्य में सनातन धर्म, संस्कृति एवं परम्परा के विषय में कुछ भी बोलने से पहले लोग सही से सनातन को समझकर बोलेंगे।

लगातार समाज में एक वर्ग विशेष के प्रति फैलाई जा रही दुर्भावना के प्रति स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस महत्वपूर्ण एवं समसामयिक चिन्तन दृष्टि से तथ्यपरक लेख लिखने की आवश्यकता हुई। तो आइए जानते है क्या है जातिव्यवस्था ? प्रश्न है, जातिव्यवस्था मनुष्य के द्वारा बनाई गयी है या ईश्वर के द्वारा ? उत्तर आता है, निश्चित रूप से ईश्वर द्वारा बनाई गयी है !

दूसरा प्रश्न है क्या इसे तर्क के द्वारा समझा सकते है ? उत्तर है हां क्यों नहीं बिल्कुल समझा सकता हूँ ! प्रश्नकर्ता लेकिन न तो मुझे संस्कृत का ज्ञान है और ना ही मैं शास्त्रों का ज्ञाता हूं, हाँ अंग्रेजी से मैंने एम.ए .किया है ! उत्तर, कोई बात नहीं संस्कृत या शास्त्रों का ज्ञान नहीं होगा चलेगा किन्तु कॉमनसेंस होना जरुरी है! पुनः प्रश्नकर्ता, जी वो तो है ! उत्तर अब हम मुख्य विषय की शुरुआत करते है,

*मुख्य न्यासी श्री श्री 1008 श्री मौनी बाबा चैरिटेबल ट्रस्ट (न्यास) व गुरुकुल एवं मन्दिर सेवा योजना प्रमुख जम्मू कश्मीर प्रान्त।

कृपया बताएँ कि इस पृथ्वी पर कितने प्रकार के जीव रहते है? प्रश्नकर्ता, मनुष्य, पशु,पक्षी, जलचर, पेड़, पौधे इत्यादि ! उत्तर, बिल्कुल सही अब एक बात बताएं पशु कहने से सभी पशु शेर हो गए क्या, पक्षी कहने से सभी पक्षी तोता हो गए क्या? जलचर कहने से सभी शार्क मछली हो गए क्या? पेड़ कहने से सभी आम हो गए क्या? प्रश्नकर्ता नहीं, शेर जानवरों की जाति है, तोता पक्षियों की जाति है और आम पेड़ की जाति है! उत्तर तो क्या इन्हें मनुष्य ने बनाया है?

प्रश्नकर्ता, नहीं ये तो ईश्वर की बनाई व्यवस्था है। उत्तर, ठीक उसी प्रकार मनुष्य कहने से सभी ब्राह्मण हो गए क्या? नहीं, ये तो मनुष्यों की जाति व्यवस्था है जो की ईश्वर द्वारा बनाई गयी है, जैसे जानवर शब्द से हजारों जानवरों का होना समझा जाता हैं, पक्षी शब्द से हजारों प्रकार के पक्षी होने का बोध होता हैं, फल शब्द से हजारों प्रकार के फलों का होना सुनिश्चित होता है उसी प्रकार मनुष्य शब्द से हजारों प्रकार के मनुष्यों का होना सिद्ध होता है साथ ही साथ इन सभी की जाति के साथ-साथ प्रजाति का होना भी पाया जाता है! और सुनो जातिव्यवस्था केवल मनुष्य के लिए ही नहीं अपितु यह संसार अनेक प्रकार की विविधताओं से भरा पड़ा है! आप स्वयं देखिये आम की कितनी प्रजातियाँ होती है, नीम की कितनी प्रजाति होती है, शेर की जाति-प्रजाति, बन्दर, घोड़ा, तोता, सर्प, गेंहू, चना, चावल इत्यादि! अतः अब आप ही बताएँ कि इसमें मनुष्य द्वारा जातिव्यवस्था का निर्धारण करना कहा सिद्ध होता है!

प्रश्नकर्ता, मै आपकी बात से सहमत हूँ कृपया आप जातिव्यवस्था के विज्ञान को सरल भाषा में विस्तार से समझाने का कष्ट करे ! उत्तर, ब्रम्हाजी ने सृष्टि रचना के समय अपने मुख से ब्राह्मण को उत्पन्न किया, भुजाओं से क्षत्रियों को उत्पन्न किया, अपने उदर से वैश्यों को प्रकट किया तथा अपने चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति की अर्थात् मुख से मेधाशक्ति, भुजाओं से रक्षाशक्ति, उदर से अर्थशक्ति एवं चरणों से श्रमशक्ति को उत्पन्न किया, इसका अर्थ यह हुआ की ब्राह्मणों के पास जो शक्ति है उसका सम्बन्ध सिर से है, यानि ब्राह्मण के पास देखने, सुनने, बोलने, बताने, सूंघने तथा किसी को भी खा जाने की शक्ति होती है। प्राचीन काल में किसी भी राज्य में जो राजा होते थे वे अपने मार्गदर्शक के रूप में किसी ब्राह्मण को जरूर नियुक्त करता था तथा उन्हीं के परामर्श से अपनी प्रजा का पालन करता था, क्योकि वे जानते थे की मेरे पास शक्ति तो है ज्ञान नहीं, क्षत्रियों को भुजाओं से उत्पन्न किया तो स्वाभाविक है कि उनके पास भुजाओं का बल अत्यधिक पाया जाता है और किसी भी राज्य की रक्षा का दायित्व क्षत्रियों का होता है, उसी प्रकार वैश्यों की उत्पत्ति उदर से हुई तो उनके पास संग्रह तथा वितरण की कुशलता

पाई जाती हैं यही उसकी शक्ति का आधार है, ठीक उसी प्रकार शूद्रों को पैरो से उत्पन्न किया यानी शूद्रों के पास श्रम शक्ति होती है जो श्रम वे कर सकते हैं वह अन्य कोई वर्ण या जाति का व्यक्ति नहीं कर सकता, इसीलिए शास्त्र वचन भी है सभी की धर्म सिद्धि का मूल सेवा है। सेवा किये बिना किसी का भी ध र्म सिद्ध नहीं होता। अतः सभी धर्मो में आधारभूत सेवा ही धर्म है, इसीलिए इस दृष्टि से विचार करें, तो शुद्र अन्य वर्णों में महान है।

ब्राह्मण का धर्म मोक्ष के लिए अनवरत चिन्तन है, क्षत्रिय का धर्म भोग के लिए, वैश्य का धर्म अर्थ के लिए है और शुद्र का धर्म कर्म के लिए है, इस प्रकार अन्य तीन वर्णों के धर्म अन्य तीन पुरषार्थ के लिए है किन्तु शुद्र का धर्म स्वपुरषार्थ के लिए है अतः इसकी वृत्ति से ही भगवान् प्रसन्न हो जाते है। अस्तु अब आगे सुनिए यह जो ब्रम्हाजी की सृष्टि है यह भगवान् का शरीर ही है इसी में सारा ब्रम्हाण्ड समाया हुआ है। सभी लोक इसी शरीर में है! यह विराट शरीर ही हमारा संसार है! अब आप बताइए की किस किस अंग से कौन सा कार्य होता है, सिर का कार्य हाथों द्वारा संभव है, नहीं। हाथों का कार्य उदर द्वारा संभव है, नहीं। उदर का कार्य पैरों द्वारा संभव है, नहीं।

अब आप विचार करें कि आजकल तथाकथित बुद्धिजीवी लोगों के कहने पर जातिगत व्यवस्था को कदाचित भंग कर दिया जाए तो क्या स्थिति उत्पन्न होगी विचार कीजिए, अब विचार ही क्यों करना है देख ही लीजिए। वर्तमान में जो शिक्षा पद्धति व जीविका पद्धति हमारे ऊपर थोपी गयी है उसका परिणाम क्या हो रहा है वर्णसंकरता, कर्मसंकरता और ऊपर से आरक्षण हमारे यहाँ कभी भी किसी के लिए भी रोजी रोटी का संकट था क्या? कभी नहीं प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति तथा वर्ण के अनुसार अपना जीवन यापन करता था ! कोई भी किसी के कर्म का अतिक्रमण नहीं कर सकता था अपितु एक दूसरे के सामंजस्य से सभी कार्य होते थे। कोई भी समाज अपने को ही नहीं समझता था ! प्रत्येक समाज अपनी जाति पर गर्व महसूस करता था क्योकि वो जानते थे की जो गुण योग्यता उनमे है वह अन्य के पास नहीं है यह ईश्वर का उस समाज के लिए वरदान हुआ या नहीं ? अब हम आपको दूसरे रूप में बताने का प्रयास करते है। कल्पना कीजिए कि आप स्वयं भगवान् विराट है यह शरीर जो आपको प्राप्त हुआ है यह आपका संसार है और इस शरीर के मालिक या भगवान् आप स्वयं है एवं इस संसार में आपको मुख के रूप में ब्राह्मण, भुजाओं के रूप में क्षत्रिय, उदर के रूप में वैश्य और पैरों के रूप में शुद्र प्राप्त हुए हैं! अब इनसे आपको इस संसार रूपी शरीर का संचालन करना है कैसे करेंगे ? अब आप कहे कि हम जातिव्यवस्था

में विश्वास नहीं करते बल्कि सबको समान दृष्टि से देखते है, कोई ब्राह्मण नहीं, कोई क्षत्रिय नहीं, कोई वैश्य नहीं, कोई शुद्र नहीं, अर्थात् सभी अंगो को समान मानता हूं, किसी भी अंग से कोई भी कार्य करा सकता हूं ! और तो और अब मैं अपने चरणों को यानि की शूद्रों को मुख्य धारा में लाने का प्रयास करूँगा और ब्राह्मणों से वो कार्य करवाऊंगा जो आजतक श्रमशक्ति [शुद्र] द्वारा किये जाते थे! वैश्यों के कार्य क्षत्रिय करेंगे, क्षत्रिय के कार्य वैश्य से, अर्थात् सभी वर्णों को सभी कार्य का अधिकार होगा ! अब फिर से आप कल्पना करके बताएं कि आपके संसार रूपी शरीर की स्थिति क्या होगी ? वही स्थिति आज हमारे समाज की हो रही है। उदाहरण लीजिए जब से आरक्षण आया है तब से हमारे चरण [श्रमशक्ति] जमीं से ऊपर उठ गए, क्या मतलब निकला? चरणों का स्थान वाहनों ने ले लिया या नहीं? आज कितने व्यक्ति संसार में अपने पैरो का उपयोग करते है आवागमन में, अब पैरो का उपयोग केवल विशेष परिस्थिति में ही किया जाता है ताकि इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो ! और तो और टी.वी. का चैनल बदलने के लिए भी पैरों को कष्ट देना उचित नहीं रह गया। विकल्प के तौर पर अब हमारे पास रिमोट कण्ट्रोल जो आ गया है ! अब जब पैरों द्वारा श्रम ही नहीं होगा तो क्या होगा, मोटापा बढ़ जाएगा पेट बाहर निकल आएगा, मतलब संसार की सारी संपत्ति का वैश्य [उदर] संग्रहण तो करेंगे किन्तु वितरण नहीं होगा, वितरण क्यों नहीं होगा, क्योकि श्रम नहीं हो रहा। अब बारी आती है ब्राह्मणों की यानि मुख की, क्या स्थिति है, आज मुख [ब्राह्मण] की जितनी सफाई की जाती है शायद ही किसी अंग को इतना चमकाया जाता हो जितना चेहरे को चमकाया जाता है! सबसे ज्यादा जिम्मेदारी भी इसी की है, क्योकि संसार रूपी शरीर के सञ्चालन में इसकी भूमिका सबसे अहम् होती है, क्योंकि निरन्तर जप-तप एवं साधना द्वारा समाज के हित के लिए कार्य करना इनका मुख्य दायित्व था।

आप विचार करें बिना पैरो के शरीर जीवित रह सकता है, बिना हाथों के शरीर जीवित रह सकता है, किन्तु सिर को अगर धड़ से अलग कर दिया जाए तो कोई जीवित रह सकता है? कल्पना कीजिए महोदय! ऐसा है कि हम कोई समानता के विरोधी नहीं है सभी को समानता का अधिकार निश्चित ही प्राप्त होना चाहिए इसमें कुछ भी गलत नहीं है किन्तु समानता का मतलब किसी के अधिकारों का अतिक्रमण करना नहीं है ! आप ही बताइए आप अपने किस अंग से भेदभाव करते है, किसी से नहीं, क्योकि वे सब आपके अंग है ! ईश्वर द्वारा संचालित सृष्टि में सभी जीवों का गुण कर्म का विभाग गीता जी में भी वर्णित है।

अभी कुछ समय पहले एक पोस्ट फेसबुक और पेपरों में पढ़ रहा था, उसमें एक सज्जन ने जातिव्यवस्था के ऊपर बोला है और इस पर लिखा कि ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण, क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय, ऐसा कैसे संभव हो सकता है, इस प्रकार तो डॉक्टर का बेटा डॉक्टर, मास्टर जी का बेटा मास्टर यह तो गलत है, अब मै उन सज्जन से कहूँगा कि मान्यवर आप जिस व्यवस्था के अन्तर्गत बात कर रहे वह मैकाले की शिक्षा पद्धति के पश्चात् ज्ञान से प्रभावित है डॉक्टर, मास्टर जी न कि सनातन व्यवस्था के, हमारे यहाँ तो वैद्य का बेटा वैद्य, सुतार का बेटा सुतार, लोहार का बेटा लोहार, सुनार का बेटा सुनार, ब्राह्मण का बेटा ब्राह्मण और क्षत्रिय का बेटा क्षत्रिय ही होता है ! उन्हें कुछ सीखने कही बाहर नहीं जाना होता, अपितु अपनी परम्परा प्राप्त आजीविका का ज्ञान उसके DNA यानि संचित कर्म में रचा बसा होता है ! आवश्यकता है तो अपने वर्ण या जाति के गुणों को निखारने की, क्योंकि हीरे को जब तक तराशा नहीं जायेगा तब तक वह किसी के मुकुट की शोभा नहीं बढ़ा सकता। आजकल लोग नारे लगाने लगे है 'जाति पातीं की करो विदाई' शायद ऐसा इसीलिए बोलने और करने पड़ रहे है क्योंकि अब परिवार विखंडित हो रहे हैं, संस्कार, संस्कृति और धार्मिक आध्यात्मिक अनुष्ठान से लोग दूर हो गए हैं याद करें, अभी से कुछ वर्ष पूर्व में जब हमारे विवाह आदि संस्कारों में आधुनिकीकरण के रंग नहीं चढ़े थे तब तक सभी जाति के लोग किसी न किसी रूप में एक दूसरे के सहयोग में सम्मिलित होते थे। समरसता का दूसरा उदाहरण देखे तो कुम्भ आदि अवसरों पर समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग एक ही घाट पर स्नान करते रहें। आज जाति व्यवस्था समाज में समस्या क्यों बनी यह और अधिक विचार का विषय है। इसे बुद्धिजीवी लोगों को चिन्तन करना चाहिए। आज के परिवेश में चल रही मनगढ़ंत बातों में आने से पहले अपने सनातन धर्म, संस्कृति एवं परम्परा के विषय में हमारे ऋषियों द्वारा रचित एवं व्याख्यायित ग्रंथों एवं स्मृतियों का अध्ययन अवश्य करें, क्योंकि हमारे ज्ञानाभाव के कारण ही हमें कोई भी दिग्भ्रमित कर सकता हैं। इस लेख को पढ़कर जिनका ज्ञान अपनी परम्परा के विषय में बढ़ा है वे अपने समाज में समझाएँ और जिन्हें कोई प्रश्न अथवा शंका हो वे हमें सुझाव दे सकते हैं। आप सभी का स्वागत है।

■

श्री गोरखनाथ मन्दिर के प्रकाशन

1.	गोरखदर्शन	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	150.00
2.	महन्त दिग्विजयनाथ स्मृति ग्रन्थ	डॉ. भगवती प्रसाद सिंह	80.00
3.	नाथ योग	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	10.00
4.	आदर्श योगी	रघुनाथ शुक्ल	40.00
5.	महायोगी गुरु गोरखनाथ एवं उनकी तपस्थली	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
6.	गोरखवानी	रामलाल श्रीवास्तव	110.00
7.	गोरक्षसिद्धान्त संग्रह	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
8.	श्री गोरक्ष वैदिक पूजा पद्धति	वेदाचार्य रामानुज त्रिपाठी	8.00
9.	अमनस्क योग	रामलाल श्रीवास्तव	15.00
10.	गोरक्ष पद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
11.	विवेक मार्तण्ड		7.00
12.	महार्थ मंजरी		6.00
13.	गोरखचरित्र	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
14.	हठयोग प्रदीपिका	रामलाल श्रीवास्तव	30.00
15.	सिद्धसिद्धान्तपद्धति	रामलाल श्रीवास्तव	25.00
16.	योग रहस्य	आचार्य अक्षय कुमार बनर्जी	25.00
17.	योग बीज	रामलाल श्रीवास्तव	6.00
18.	शाबर चिंतामणि	नित्यनाथ सिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ	7.00
19.	योगी सम्प्रदाय (नित्कर्म संचय)		90.00
20.	गोरख चालीसा		2.00
21.	नाथसिद्ध चरितामृत	रामलाल श्रीवास्तव	70.00
22.	नाथ पंथ गढ़वाल के परिप्रेक्ष्य में	विष्णुदत्त कुकरेती	30.00
23.	अमरकाया महायोगी गोरखनाथ	श्रीमती माया देवी	10.00
24.	युगपुरुष महन्त दिग्विजयनाथ ने कहा था	महन्त योगी आदित्यनाथ	12.00
25.	गोरखनाथ और नाथसिद्ध	डॉ. अनुज प्रताप सिंह	130.00
26.	गोरक्षदर्शन	विजय पाल सिंह	40.00
27.	तन प्रकाश	श्री श्री 108 बाबा चुन्नीनाथ जी	20.00
28.	हठयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
29.	यौगिक षट्कर्म	महन्त योगी आदित्यनाथ	21.00
30.	नाथ सिद्धों का तात्त्विक विवेचन	अनुज प्रताप सिंह	70.00
31.	गोरखमहिमा	महेन्द्र नाथ गोस्वामी	30.00
32.	सुभाषित त्रिशती	रामलाल श्रीवास्तव	60.00
33.	राष्ट्रीयता के अनन्य साधक महन्त अवेद्यनाथ (3 खण्ड)	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	1100.00
34.	राजयोग स्वरूप एवं साधना	महन्त योगी आदित्यनाथ	100.00
35.	Philosophy of Gorakhnath	A.K. Banerjee	175.00
36.	The Nath-Yogi Sampradaya and The Gorakhnath Temple		3.50
37.	An Introduction to Nath-Yoga	A.K. Banerjee	15.00
38	महन्त अवेद्यानाथ स्मृति ग्रन्थ	प्रो. सदानन्दप्रसाद गुप्त	600.00
39	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	500.00
40	योग एवं महायोगी गोरखनाथ	महन्त योगी आदित्यनाथ	175.00
41	महायोगी गुरु श्रीगोरखनाथ		40.00
42	श्रीगोरखनाथ मन्दिर एवं गोरखपुर का इतिहास		40.00
43	योगिराज बाबा गम्भीरनाथ		40.00
44	युगद्रष्टा महन्त दिग्विजयनाथ		50.00
45	राष्ट्रसन्त महन्त अवेद्यनाथ		50.00

ए.पी./जी.आर-१२५/१४ ए.पी./२९०७५/७६

स्वास्थ्य-रक्षा में अमरूद (जामफल, अमृतफल) का उपयोग

अमरूद या जामफल एक सस्ता और गुणकारी फल है, जो प्राय: सारे भारत में पाया जाता है। संस्कृत में इसे 'अमृतफल' भी कहा जाता है।

आयुर्वेद के मतानुसार पका हुआ अमरूद स्वाद में खट्टा-मीठा, कसैला, गुण में ठंडा, पचने में भारी, कफ तथा वीर्यवर्धक, रुचिकारक, पित्तदोषनाशक, वातदोषनाशक एवं हृदय के लिये हितकर है। अमरूद पागलपन, भ्रम, मूर्च्छा, कृमि, तृषा, शोष, श्रम, विषम ज्वर (मलेरिया) तथा जलनाशक है। यह शक्तिदायक, सत्त्वगुणी एवं बुद्धिवर्धक है। भोजन के एक-दो घंटे के बाद इसे खाने से कब्ज, अफरा आदि की शिकायतें दूर होती हैं। सुबह खाली पेट अमरूद खाना भी लाभदायक है।

विशेष - अधिक अमरूद खाने से वायु, दस्त एवं ज्वर की उत्पत्ति होती है तथा मन्दाग्नि एवं सर्दी भी हो जाती है। जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, उन्हें अमरूद कम खाना चाहिये।

अमरूद खाते समय इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इसके बीज ठीक से चबाये बिना पेट में न जायें। जामफल (अमरूद) को या तो खूब अच्छी तरह चबाकर निगले या फिर इसके बीज अलग करके केवल गूदा ही खाये। इसका साबूत बीज आन्त्रपुच्छ (अपेंडिक्स) में चला जाय तो फिर बाहर नहीं निकल पाता जिससे प्राय: 'अपेंडिसाइटिस' होने की सम्भावना होती है।

खाने के लिये पके हुए जामफल का ही प्रयोग करें। कच्चे जामफल का उपयोग सब्जी के रूपमें किया जा सकता है। दूध एवं जामफल खाने के बीच दो-तीन घंटों का अन्तर अवश्य रखे।

अमरूद (जामफल) का औषध रूप में प्रयोग

(1) सर्दी-जुकाम- जुकाम होने पर एक जामफल का गूदा बिना बीज के खाकर एक गिलास पानी पी ले। दिन में ऐसा दो-तीन बार करे। पानी पीते समय नाक से साँस न ले और न छोड़े। नाक बंद करके पानी पिये और मुँह से ही साँस बाहर फेंके। इससे नाक बहने लगेगा। नाक बहना शुरू होते ही जामफल खाना बंद कर दे। एक-दो दिन में जुकाम खूब झड़ जाय तब रात को सोते समय पचास ग्राम गुड़ खाकर बिना पानी पिये सिर्फ कुल्ला करके सो जाय। जुकाम ठीक हो जयगा।

(2) खाँसी-एक पूरा जामफल आगकी गरम राख में दबाकर सेंक ले। दो-तीन दिनतक प्रतिदिन इस प्रकार एक जामफल खाने से कफ ढीला होकर निकल जाता है और खाँसी में आराम हो जाता है। जामफल के पत्ते पानी से धोकर साफ कर ले और फिर पानी में उबाले। जब उबलने लगे, तब उसमें दूध और शक्कर डाल दे, फिर उसे छान ले। इसको पीने से खाँसी में आराम मिलता है।

प्रकाशक :
गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर-२७३०१५
web: www.gorakhnathmandir.in | E-mail: gorakhnathmandir@yahoo.com
दूरभाष: (०५५१) २२५५४५३, २२५५४५४, फैक्स: ०५५१-२२५५४५५